(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का अध्यात्मिक मासिक-पत्र)

वार्षिक मू० २।।) — एक अंक ।)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ।।

सम्पादक-पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, सहा० सम्पा०-प्रो० रामचरण महेन्द्र एम०ए०

वर्ष ८ — मथुरा, १ अप्रेल सन् १९४७ ई० — अंक ४

आत्म विश्वास से महानता प्राप्त होती है।

"मैं पवित्र अविनाशी और निर्लिप्त आत्मा हूँ।" इस महान् सत्य को स्वीकार करते ही मनुष्य अमरत्व के समीप पहुँच जाता है जो अपनी आत्मा का सम्मान करता है अपनी सत्ता को श्रेष्ठ, पवित्र महान एवं विश्वासनीय अनुभव करता है वह सचमुच वैसा ही बन जाता है योग शास्त्र पुकार पुकार कर कहता है कि "जो समझता है कि मैं शिव हूं वह शिव है, जो समझता है कि मैं जीव हूं वह जीव है।" यदि आप अपने को महान् बनाना चाहते हैं तो अपनी महानता को देखिए, अनुभव कीजिए और उसे द्रुत गति से चरितार्थ करना आरम्भ कर दीजिए।

जो व्यक्ति बार-बार अपने सम्बन्ध में बुरे विचार करेगा, हीनता और तुच्छता के भाव रखेगा वह निस्सन्देह कुछ समय में वैसा ही बन जावेगा! मैं नीच हूँ, पापी हूँ, तुच्छ हूँ, दास हूँ, असमर्थ हूँ, अयोग्य हूँ। आलसी हूँ, भाग्य हीन हूँ, दीन हूँ, दुखी हूँ, इस प्रकार के मनोभाव रखने का स्पष्ट फल यह होता है कि हमारी अन्तः चेतना उसी ढांचे से ढल जाती है।

आप अपने को तुच्छ मत मानिए ईश्वर का अविनाशी राजकुमार—मनुष्य—किसी भी प्रकार तुच्छ नहीं हो सकता। अपने पिता की सम्पूर्ण शक्तियां उसके अन्दर सन्निहित हैं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि वह अपनी महानताओं को अनुभव करें और अपने जीवन को सब ओर से महान बनाने का प्रयत्न करें। इस साधना पथ पर कदम बढाने वाला अपनी वास्तविक महत्ता को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है।

'अखण्ड-ज्योति' द्वारा प्रकाशित अमूल्य पुस्तकें।

यह बाजारू किताबें नहीं हैं। इनकी एक एक पंक्ति के पीछे लेखकों का गहरा अनुभव अनुसंधान है! इनमें जो पुस्तकें आपने अभी तक नहीं पढ़ीं, उन्हें आज ही मँगा लीजिए।

(१) मैं क्या हूँ? ।=)
(२) सूर्य चिकित्सा विज्ञान ।=)
(३) प्राण चिकित्सा विज्ञान ।=)
(४) परकाया प्रवेश ।=)
(५) स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या ।=)
(६) मानवीय विद्युत के चमत्कार ।=)
(७) स्वर योग से दिव्य ज्ञान ।=)
(८) भोग में योग ।=)
(९) बुद्धि बढ़ाने के उपाय ।=)
(१०) धनवान बनने के गुप्त रहस्य ।=)
(११) पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि ।=)
(१२) वशीकरण की सच्ची सिद्धि ।=)
(१३) मरने के बाद हमारा क्या होता है ।=)
(१४) जीव जन्तुओं की बोली समझना ।=)
(१५) ईश्वर कौन है? कहां है? कैसा है? ।=)
(१६) क्या धर्म? क्या अधर्म? ।=)
(१७) गहना कर्मणोगति ।=)
(१८) जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर तात्विक प्रकाश ।=)
(१९) पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा ।=)
(२०) शक्ति संचय के पथ पर ।=)
(२१) आत्म गौरव की साधना ।=)
(२२) प्रतिष्ठा का उच्च सोपान ।=)
(२३) मित्र भाव बढ़ाने की कला ।=)
(२४) आन्तरिक उल्लास का विकाश ।=)
(२५) आगे बढ़ने की तैयारी ।=)
(२६) अध्यात्म धर्म का अवलम्बन ।=)
(२७) ब्रह्म विद्या का रहस्योद्‌घाटन ।=)
(२८) ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग ।=)
(२९) यम और नियम, ।=)
(३०) आसन और प्राणायाम ।=)
(३१) प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि ।=)
(३२) तुलसी के अमृतोपम गुण ।=)
(३३) आकृति देखकर मनुष्य की पहचान ।=)
(३४) मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा ।=)
(३५) ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग ।=)
(३६) हस्त रेखा विज्ञान ।=)
(३७) विवेक सतसई ।=)
(३८) संजीवनी विद्या ।=)
(३९) गायत्री की चमत्कारी साधना ।=)
(४०) महान जागरण ।=)
(४१) तुम महान हो ।=)
(४२) गृहस्थ योग ।=)
(४३) अमृत पारस और कल्पवृक्ष की प्राप्ति ।=)
(४४) घरेलू चिकित्सा ।=)
(४५) बिना औषधि के [illegible] कल्प ।=)
(४६) पंच तत्वों [illegible] रोगों का निवारण ।=)
(४७) हमें स्वप्न क्यों [illegible] हैं? ।=)
(४८) विचार करने [illegible] ।=)
(४९) दीर्घ जीवन के [illegible] ।=)
(५०) हम वक्ता कैसे बन सकते हैं ।=)
(५१) लेखन कला ।=)
(५२) प्रार्थना के [illegible] कार ।=)
(५३) विचार [illegible] ।=)
(५४) नेत्र रोगों की [illegible] चिकित्सा ।=)
(५५) अध्यात्म [illegible] ।=)
(५६) स्वप्न दोष की [illegible] निक चिकित्सा ।=)
(५७) सफलता के [illegible] ।=)
(५८ शिखा और यज्ञोपवीत की रहस्यमय विवेचना ।=)
(५९) दूध की [illegible] शक्ति ।=)
(६०) दैवी [illegible] ।=)
(६१) अध्यात्म विद्या का [illegible] द्वार ।=)
(६२) कुछ धार्मिक प्रश्नों का उचित समाधान ।=)
(६३) सुखी वृद्धावस्था ।=)
(६४) आत्मोन्नति का [illegible] निक मार्ग ।=)

पांच रुपये से अधिक की पुस्तकें लेने पर डाकखर्च माफ। इससे कमकी पुस्तकों का डाकखर्च ग्राहक के जिम्मे

पता:—'अखण्ड ज्योति' कार्यालय, मथुरा।

मथुरा १ अप्रेल सन् १९४७ ई०

योग साधना की आवश्यकता

— x —

योग साधना मनुष्य की एक दैनिक आवश्यकता है। योग का कार्य है:—मिलना। दो बिछुड़े हुओं का मिलप बड़ा आनन्द दायक होता है। यही आनन्द हम योग साधना द्वारा प्राप्त करते हैं। आत्मा का परमात्मा से जब मिलना होता है तो बिछुड़ी हुई भावक माता और छोटी बिटिया के अन्त स्तलों की जो दशा होती है वही अनुभूति साधक को प्राप्त होती है।

भक्त, लोग ईश्वर आराधना के समय जो आनन्द उपलब्ध करते हैं उसकी तुलना संसार के अन्य किसी आनन्द से नहीं की जा सकती। रामायण में बालि की मृत्यु के समय का बड़ा सुन्दर चित्रण मिलता है। मृत्यु शय्या पर पड़े हुए बालि से भगवान् राम ने पूछा कि तुम स्वर्ग मुक्ति या जो सद्गति चाहो वह प्राप्त कर सकते हो। वालि ने उन्हें उत्तर दिया।

यही भावनाएं प्रायः अन्य सभी अनुभवी अध्यात्म वादियों की होती हैं। स्वर्ग और मुक्ति सुख की अपेक्षा प्रभु मिलन का सुख उन्हें अधिक ऊँचे दर्जे का लगता है। अनेकों साधक अपनी भौतिक संपदाओं में लात मार कर आत्मिक साधनाओं में तल्लीन होते हैं। क्योंकि उन्हें इस त्याग की अपेक्षा आत्मि प्राप्ति का सुख अनेक गुना महत्व पूर्ण लगता है।

आइए, इस प्रश्न पर विचार करें कि यह योग साधना क्या है? उसकी रूप रेखा क्या है? उसके द्वारा किस प्रकार हमारा क्या लाभ होता है? इन प्रश्नों का ठीक प्रकार उत्तर प्राप्त कर लेने पर इस मार्ग पर अग्रसर होना सुविधा जनक होगा।

मनुष्य के अन्तस्तल में जो शुद्ध, बुद्ध चैतन्य, सत्, चित, आनंद, सत्य शिव, सुन्दर, अजर, अमर सत्ता है वही परमात्मा है। मन बुद्धि चित्त अहंकार के चतुष्टय को जीव कहते हैं। यह जीव आत्मा से भिन्न भी है और अभिन्न भी। इसे द्वैत भी कह सकते हैं और अद्वैत भी। अग्नि में लकड़ी जलने से धुआं उत्पन्न होता है। धुएं को अग्नि से अलग कहा जा सकता है, यह द्वैत है। धुआं अग्नि के कारण उत्पन्न हुआ है, अग्नि बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं, वह अग्नि का ही अंग है, यह अद्वैत है। आत्मा अग्नि है, और जीव धुआं है। दोनों अलग भी हैं और एक भी। उपनिषदों में इसे एक वृक्ष पर बैठे हुए दो पक्षियों की उपमा दी गई है। गीता में इन दोनों का अस्तित्व स्वीकार करते हुए एक को क्षर (नाशवान) एक को अक्षर (अविनाशी) कहा गया है।

भ्रम से, अज्ञान से, माया से, शैतान के बहकावे से, इन दोनों की एकता, पृथकता में बदल जाती है। यही दुख का, शोक का, संताप का, क्लेश का, वेदना का कारण है। पिता पुत्र में, पति स्त्री में भाई भाई में सास बहू में, नौकर मालिक में, जब

तो घर में सब सुख रहता है, श्री वृद्धि होती है और वह परिवार स्वर्गीय आनन्द का उपभोग करता है। यही स्थिति मानव जीवन की है। जहां मन और आत्मा का एकीकरण होता है, जहां दोनों की इच्छा रुचि एवं कार्य प्रणाली एक होती है वहां अपार आनन्द का स्रोत उमड़ता रहता है। पर जहां दोनों में विरोध होता है, जहां नाना प्रकार के अन्तर्द्वन्द चलते रहते हैं, वहां आत्मिक शान्ति के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं।

जिनके संबंध दूर के हैं उनमें मतभेद, विरोध या द्वेष हो तो बहुत बड़ी हानि नहीं, पर जिनके सम्बन्ध अति निकट के हैं उनमें थोड़ा सा भी विरोध होना भारी गड़बड़ी उत्पन्न करता है। पति पत्नी का आपसी संबंध बहुत घनिष्ट है इस लिए उन दोनों को आपस में एक दूसरे से पूर्णतया सहयोग रखना आवश्यक समझा जाता है पतिव्रत धर्म का महात्म्य इसीलिए है कि इन दोनों सहचरों में पूर्ण एकता रहे। कदाचित इन दोनों में विरोध हो, एक दूसरे से बैर रखें, कार्य प्रणाली प्रथक रखें तो दाम्पति जीवन कितना अशान्त हो जायगा उसकी भयंकरता की कल्पना सहज ही की जा सकती है।

मन और आत्मा का संबंध पति पत्नी और पिता पुत्र की अपेक्षा अधिक घनिष्ट है इसलिए उन दोनों की एकता की ओर भी अधिक आवश्यकता है। दोनों का दृष्टि कोण एक होना चाहिए, दोनों की इच्छा रुचि एवं कार्य प्रणाली एक होनी चाहिए तभी जीवन में सच्ची शान्ति के दर्शन हो सकते हैं। पर इस स्थिति को विरले ही लोग प्राप्त कर पाते हैं। जिस प्रकार हमारे घर कुटुम्ब और समाज में अनैक्य के कारण कलह क्लेश और संतापों की भर मार है वैसे ही आन्तरिक आत्मिक एकता न होने से मनुष्य के मन क्षेत्र में घोर अशान्ति मची रहती है। इस अव्यवस्था के संताप से उसका अन्तःलोक दावानल की तरह जलता रहता है। उसके पास भौतिक सुख साधन कितने ही अधिक क्यों न हों उससे अन्तःकरण को जरा भी शान्ति उपलब्ध को हम जानते हैं जिनके पास धन दौलत की, ऐश आराम के साधनों की, किसी प्रकार कमी नहीं है फिर भी वे अनेकों चिन्ताओं, आवेशों, वेदनाओं, संतापों से घिरे रहते हैं इससे प्रकट है कि केवल धन दौलत से ही कोई व्यक्ति जीवन का आनन्द प्राप्त नहीं कर सकता। इसी प्रकार ऐसे भी अनेकों व्यक्ति हैं जिनके पास रुपया पैसा या अन्य संपदाऐं नहीं हैं फिर भी वे खूब मस्त रहते हैं, सुख की नींद सोते हैं और अपने चारों ओर आनन्द देखते हैं। इससे प्रकट है कि धन दौलत के या साधनों के न होने से सच्चे-सुख को कोई कमी नहीं आती। अमीरों का भी दुखी रहना और गरीबों का भी सुखी होना इस बात का प्रमाण है कि सुख का वास्तविक स्थान बाहर नहीं है, बाहर की वस्तुओं में नहीं है।

मन और अन्तःकरण के मिलन में, एकता में सुख है। इसी को आत्मा और परमात्मा का मिलन कहते हैं। इस मिलन का दूसरा नाम योग है दो वस्तुओं के मिलने से एक नवीन तत्व उत्पन्न होता है। पति पत्नी का मिलन एक मनोहर सन्तान का उपहार-उपस्थित करता है, बिजली की ऋण और धन (ठंडी और गरम) शक्ति के तार जब आपस में मिलते हैं तो एक नवीन शक्ति उत्पन्न होती है। आत्मा और परमात्मा के योग से एक ऐसे आनन्द का आविर्भाव होता है जिसकी तुलना संसार के अन्य किसी भी सुख से नहीं की जा सकती। इस सुख को परमानन्द, जीवन मुक्ति, ब्रह्मनिर्वाण, आत्मोपलब्धि, प्रभुदर्शन, आदि नामों से पुकारा जाता है।

मन का वस्तुतः स्वतंत्र कोई अस्तित्व नहीं है। वह आत्मा का ही एक उपकरण, औजार, यंत्र है। आत्मा की कार्यपद्धति को सुसचालित करके चरितार्थ करके स्थूल रूप देने के लिए मन का अस्तित्व है। इसका वास्तविक कार्य यह है कि आत्मा की इच्छा एवं रुचि के अनुसार विचार धारा एव कार्य प्रणाली को अपनायें। इस उचित एवं स्वाभाविक

प्राणी जीवन के सच्चे सुख का रसास्वादन करता है। पर दुर्भाग्य की बात है कि आज हममें से अधिकांश को यह स्थिति उपलब्ध नहीं है। आत्मा सत् प्रधान है। उसकी इच्छा एवं रुचि सात्विकता की दिशा में होती है। जीवन की हर घड़ी सात्विकता में सराबोर हो, हर विचार और कार्य सात्विकता से परिपूर्ण हो यह आत्मा की मांग है। पर माया या अविद्या के कुचक्र में फँस कर वे यह दूसरी ओर चल देता है। रज और तम में उसकी प्रवृत्ति दौड़ती है। इस कार्य विधि को निरन्तर प्रोत्साहन मिलने से वह इतनी प्रबल हो जाती है कि आत्मा की पुकार के स्थान पर मन की तृष्णा ही प्रधानता प्राप्त कर लेती है। आत्मा कहती है जीवन का उपयोग सात्विकता मय होना चाहिए, परमार्थ सेवा, तप, संयम, ईश्वराधन, कर्तव्य पालन उचित उपार्जन, निर्दोष मनोरंजन, प्रेम सद्भाव, सहयोग की प्रवृत्तियों को अपनाना चाहिए। पर मन की दौड़ इससे विपरीत दिशा की होती है वह ऐश. आराम, बड़ाई, पद, दम्भ, काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार व्यसन, मनोरंजन में रस लेता है और इन की पूर्ति के लिए इतना आतुर हो जाता है कि उचित अनुचित का. पापपुण्य का भी विचार छोड़ देता है और जैसे भी हो—आत्मा की आवाज को कुचल कर भी—अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करना चाहता है।

यह संघर्ष यह अनैक्य, यह विरोध ही आत्मिक अशान्ति का मूल कारण है! व्यभिचारिणी स्त्री की स्वच्छंदता के कारण धर्म गए पति की जो दशा होती है, व्यसनी आवारा, कुसंगति में पड़े हुए फिजूल खर्च, दुराचारी बदमाश बेटे की हरकतों से प्रतिष्ठित पिता को जो कष्ट होता है, वैसा ही कष्ट इस आत्मिक विपरीतता के कारण आत्मा को होता है। इस कष्ट के कारण वह कराहती रहती है, इसका संताप, भोगों के छींटों से किसी प्रकार शान्त नहीं होता। यह आन्तरिक अशान्ति एक प्रकार का नरक है। बन्धन है। इस नरक और बन्धन से छुटकारा तभी मिल सकता है जब [illegible]

करण में मेल हो। इस मेल को, एकता को एवं उसकी कार्य पद्धति को योग साधना कहते हैं।

यह योग साधना जीवन का एक नित्य कर्म होना चाहिए। संसार के वातावरण का कुप्रभाव मन पर जमता है, इसको नित्य ही साफ करने की जरूरत पड़ती है। कमरे में नित्य धूलि जमती है, इसलिए नित्य झाडू लगानी पड़ती है, त्वचा पर, नाक कान, आँख, दांत, जीभ पर नित्य मैल जमता है इसलिए उनको जल से नित्य स्वच्छ करते हैं, इसी प्रकार मन पर सांसारिक दुष्प्रवृत्तियों के कुसंस्कार नित्य जमते हैं उनको हटाने के लिए नित्य योग साधन की जरूरत पड़ती है। रोज जमने वाले मानसिक मैलों की सफाई के लिए और मन की आत्म विरोधी प्रवृत्तियों को हटाने के लिए योग साधना आवश्यक है। और इतनी आवश्यक है कि उसे स्नान, शौच, भोजन, शयन की ही भांति नित्य कर्मों में स्थान मिलना चाहिए। साधना, अन्तःकरण का शौच और आहार है इसलिए उसकी ओर तो शरीर की अपेक्षा अधिक सावधानी बरतनी चाहिए।

तेज धूप में चलकर थका हुआ पथिक जिस प्रकार शीतल सरोवर के तीर सघन वृक्षों की छाया में शान्ति अनुभव करता है! उसी प्रकार सांसारिक संघर्षों के व्यथित मनुष्य अन्तर्मुखी होकर आत्मा के निकट जब बैठता है तो एक शान्ति अनुभव करता है। इस थोड़ी देर के सुस्ता लेने से उसे एक स्फूर्ति, चैतन्यता एवं ताजगी प्राप्त होती है, जिसके आधार पर जीवन पथ को उचित रीति से पार करना उसके लिए सुगम हो जाता है।

सच्ची सुख शान्ति प्राप्त करना हमारे जीवन का चरम, लक्ष है। उस लक्ष की प्राप्ति के लिए योग साधना ही एक आधार है। उस आधार के लिए यों तो जितना अधिक से अधिक समय लगाया जा सके उतना अच्छा है, पर कमसे कम २ घंटे नित्य अनिवार्य रूप से लगना चाहिए। साधना के बिना केवल वाचक ज्ञान से, किसी का वास्तविक भला नहीं हो सकता।

आत्म जागरण योग।

—•—

योग शास्त्रों के कथनानुसार साधना का प्रयोजन यह है कि "हम अपने वास्तविक स्वरूप को समझें, आत्मा का दर्शन और अनुभव करें एवं विचार और कार्यों को उस ढांचे में ढाले जो आत्मा की रुचि के अनुरूप हो।"

हम अपनी 'मैं क्या हूँ' और 'ईश्वर कौन है? कहां है? कैसा है?' पुस्तकों में उस साधना विधियों का उल्लेख कर चुके हैं जिनके द्वारा आत्म दर्शन की ओर कदम बढाया जा सकता है। आत्म दर्शन के लिए इस प्रकार के विचार और विश्वासों को मन में स्थान देना चाहिए कि "मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ।" अपने अहम् को शरीर से भिन्न अविनाशी आत्मा और शरीर मन बुद्धि को अपना औजार समझने की मान्यता जब सुदृढ़ हो जाती है तो मनुष्य उसी ढाचे में ढलने लगता है जो आत्मा के स्वार्थ एवं गौरव के अनुरूप है।

आम तौर से सभी लोग यह जानते है कि प्राणी शरीर से भिन्न है। पर यह उनका ज्ञान मस्तिष्क के अप्रभाव तक ही सीमित होता है। वे इस तथ्य को जानते तो हैं पर मानते नहीं। व्यवहार में लोग अपने को शरीर ही अनुभव करते हैं और शरीर को जिन कामों में लाभ होता है, सुख मिलता है, मनोरंजन होता है उन्हें करने के लिए दिन रात लगे रहते हैं। धन कमाने में और इन्द्रिय भोगों में आमतौर से लोगों का समय खर्च होता है। जिन चिन्ताओं में व्यस्त रहते हैं वे शरीर के लाभ हानि से ही संबंधित होती हैं। शरीर के लिए आत्मा की परवाह नहीं की जाती। पाप, अनीति, छल; दुराचार असत्य को अपना कर भी लोग स्वार्थ साधन करते हैं वह शरीर से ही संबंधित होते हैं। जन साधारण का स्वार्थ शरीर स्वार्थ से ही संबंधित होता है। मेरा स्वार्थ किसमें है? इस प्रश्न पर विचार करते हुए लोग "मेरा" शब्द का अर्थ शरीर ही करते हैं। आत्मा के स्वार्थ को आमतौर से स्वार्थ नहीं कहा जाता, वह तो एक लोकोत्तर असाधारण, पुण्य परमार्थ कहा जाता है। उसे करने की कभी कभी ही आवश्यकता समझी जाती है। इससे स्पष्ट है कि संसार में शरीर को ही 'मैं' समझने की आम प्रवृत्ति है। 'मैं' का अर्थ आत्मा है इसे जानते जरूर हैं पर व्यवहार में मानते यह हैं कि 'मैं" का अर्थ है—मेरा शरीर।

इस दृष्टि कोण से जीवन की गतिविधि में भारी अन्तर आजाता है। आत्मवादी और भौतिक दृष्टि कोण में वैसे बहुत थोडा अन्तर दिखाई पड़ता है पर अन्तर के कारण जो परिणाम उपस्थित होते हैं उनमें उतना ही भेद होता है जितना आकाश पाताल में। रेल की पटरी में लाइन बदलने की कैंची जहां लगी होती है वहां कोई बहुत भारी अन्तर दिखाई नहीं देता पर जब एक गाडी एक तरफ को गुजरती है और दूसरी गाडी दूसरी तरफ से, तो अन्त में जब चलते चलते दोनों गाड़ियां जहां पहुँचती हैं उन स्थानों में सैकड़ों हजारों मील का अन्तर होता है। एक पूर्व में पहुँचती है तो दूसरी पश्चिम में, कैंची के काटने में दो चार अंगुल का फर्क होता है पर अन्त में उसका प्रतिफल बहुत ही भिन्न होता है। ठीक यही हालत आत्मिक और भौतिक दृष्टि कोणों के बीच में है। जो व्यक्ति अपने को आत्मा मानता है वह अपना स्वार्थ उसे समझता है जिससे आत्म कल्याण होता है। वह आत्म कल्याण करने वाले विचार और कार्यों को अपनाता है। यदि इस मार्ग में चलते हुए उसे शरीर पर प्रभाव डालने वाली कोई भौतिक हानि होती है तो वह उसकी परवाह नहीं करता। इसके विपरीत भौतिक दृष्टि कोण का फलितार्थ हमारे सामने मौजूद है कि असंख्यों मनुष्य स्वर्ग नरक की, मुक्ति बंधन की चिन्ता न करके आत्म हनन करते हुए भौतिक संपदाएं कमाते हैं जिससे उनको मनोवांछित सुख सामिग्री प्राप्त हो सके।

"मैं शरीर हूँ इसलिए शरीर सुख के लिए धर्म अधर्म की परवाह न करता हुआ भौतिक सम्पदाएँ कमाऊं, उसी के लिए जीवन का प्रत्येक क्षण लगाऊँ" आज के इस लोक व्यापी दृष्टि कोण में परिवर्तन किये बिना कोई मनुष्य, कोई समाज, कोई राष्ट्र, सुख शान्ति से नहीं रह सकता। "मैं आत्मा हूँ, ईश्वर का अविनाशी राजकुमार हूं, अपने औजार शरीर और मन का उपयोग केवल उन्हीं कार्य में करूंगा जो मेरे गौरव के, धर्म के, कर्तव्य के, अनुकूल है।" यह अध्यात्मिक दृष्टि कोण जिन व्यक्तियों ने अपना लिया है उनका जीवन क्रम एक सतोगुणी ढांचे में ढल जाता है। भौतिक दृष्टि कोण मनुष्य को चिन्ता, क्रोध, शोक, द्वेष, कलह, ईर्षा, मद, मत्सर, मोह, रोग, उद्वेग आवेश का नरकीय प्रतिफल उपस्थित करता है और आत्मिक दृष्टि कोण के कारण प्रेम सहयोग, प्रसन्नता, साहस, अभय, सन्तोष, एवं सात्विक आनन्द का उपहार प्राप्त होता है। इनमें एक को नरक और दूसरे को स्वर्ग कहा जा सकता है।

योग साधना द्वारा स्वर्गीय आनन्द की प्राप्ति की जाती है। इस साधना मंदिर का पहला द्वारा आत्म जागरण है। 'मैं आत्मा हूँ" इस भाव का अन्तःकरण में प्रत्यक्ष होना उस पर पूर्ण श्रद्धा, विश्वास, निष्ठा तथा इस आस्थ होना साधना का प्रयोजन है। सोते जागते, चलते, काम करते, साधक के मन में यह गहरा विश्वास होना चाहिए कि "मैं ईश्वरका पवित्र अंश, अविनाशी आत्मा हूँ। केवल वही विचार और कार्य अपनाऊंगा जो मेरे वास्तविक आत्मिक स्वार्थ के अनुकूल है" यह छोटी शब्दावली एक कागज पर लिखकर उस स्थान पर टांग लेनी चाहिए जहां बराबर नजर पड़ती हो। इन भावनाओं को जितनी अधिक बार हो सके मानसिक जप की तरह हृदय गम करना चाहिए। लगातार बहुत दिनों तक इस तथ्य पर अन्तःकरण को केन्द्रित करने से ... [illegible] समझा जाता है। इसको आत्मिक भूमिका का जागरण कहते हैं।

आत्म जागरण योग की साधना।

किसी शान्त या एकान्त स्थान में जाइए। निर्जन, कोलाहल रहित स्थान इस साधना के लिए चुनना चाहिए। इस प्रकार के स्थान घर का स्वच्छ, हवादार कमरा भी हो सकता है और नदी तट अथवा उपवन भी। हाथ मुंह धोकर साधना के लिए बैठना चाहिए। आराम कुर्सी पर अथवा दीवार वृक्ष या मसनद के सहारे बैठ कर यह साधना भली प्रकार होती है।

सुविधा पूर्वक बैठ जाइए। तीन लम्बे-लम्बे सांस लीजिए पेट में भरी हुई वायु को पूर्ण रूप से बाहर निकालना और फिर फेफड़ों में पूरी हवा भरना एक पूरा सांस कहलाता है। तीन पूरे सांस लेने से हृदय और फुफ्फुस की भी उसी प्रकार एक धार्मिक शुद्धि होती है जैसे स्नान करने हाथ पांव धोकर बैठने से शरीर की शुद्धि होती है।

तीन पूरे सांस लेने के बाद शरीर को शिथिल कीजिए शरीर के हर अंग में से खिंच कर प्राण शक्ति हृदय के एक त्रित होरही है ऐसा ध्यान कीजिए। हाथ पांव आदि सभी अंग प्रत्यंग शिथिल, ढीले निर्जीव, निष्प्राण हो गये हैं ऐसी भावना करना चाहिए। मस्तिष्क से सब विचार धाराएँ और कल्पनाएँ शान्त हो गई है, और समस्त शरीर के अन्दर एक शान्त नील आकाश व्याप्त हो रहा है। इस शान्त शिथिल अवस्था को प्राप्त कराने के लिए कुछ दिन लगातार प्रयत्न करना पड़ता है। अभ्याससे दिन दिन अधिक शिथिलता एवं शान्ति अनुभव होती जाती है।

शरीर के भले प्रकार शिथिल हो जाने पर हृदय स्थान में एकत्रित, अंगूठे की बराबर, शुभ्र श्वेत ज्योति स्वरूप प्राण शक्ति का ध्यान करना चाहिए ... [illegible]

स्वरूप वही है। मैं सत् चित आनन्द स्वरूप आत्मा हूं। उस ज्योति के कल्पना नेत्रों से दर्शन करते हुए उपरोक्त भावनायें मन में रखनी चाहिए।

दूसरी साधना—उपरोक्त शिथिलासन के साथ आत्म दर्शन करने की साधना इस योग में प्रथम साधना है। जब यह साधना भली प्रकार अभ्यास में आजाय तो आगे सीढ़ी पर पैर रखना चाहिए। दूसरी भूमिका की साधना का अभ्यास नीचे दिया जाता है।

ऊपर लिखी हुई शिथिलावस्था में अखिल आकाश में नील वर्ण आकाश का ध्यान कीजिए। उस आकाश में बहुत ऊपर सूर्य के समान ज्योति स्वरूप आत्मा को अवस्थित देखिए। "मैं ही यह प्रकाश वान आत्मा हूँ।" ऐसा निश्चित संकल्प कीजिए। अपने शरीर को नीचे भूतल पर निष्पन्द अवस्था में पड़ा हुआ देखिए। उसके अंग प्रत्यंगों का निरीक्षण एवं परीक्षण कीजिए। यह हर एक कल पुर्जा मेरा औजार है। मेरा वस्त्र है यह यंत्र मेरी इच्छा नुसार क्रिया करने के लिए प्राप्त हुआ है। इस बात को बार-बार मनमें दुहराइए। इस निष्पंद शरीर को खोपड़ी का ढक्कन उठा कर ध्यानावस्था में मन और बुद्धि को दो सेवक शक्तियों के रूप में देखिए। वे दोनों हाथ बांधे आपकी इच्छानुसार कार्य करने के लिए नतमस्तक खड़े हैं। इस शरीर और मन बुद्धि को देख कर प्रसन्न हूजिए कि इच्छा नुसार कार्य करने के लिए यह मुझे प्राप्त हुए हैं। मैं उनका उपयोग सच्चे आत्म स्वार्थ के लिए ही करूंगा। यह भावनाएं बराबर उस ध्यानावस्था में आपके मन में गूंजती रहनी चाहिए।

तीसरी साधना:—जब दूसरी भूमिका का ध्यान भली प्रकार होने लगे तो तीसरी भूमिका का ध्यान कीजिए।

अपने को सूर्य की स्थिति में ऊपर आकाश में अवस्थित देखिए। मैं समस्त भूमंडल पर अपनी और लीला भूमि है,भूतल की वस्तुओं और शक्तियों को इच्छित प्रयोजन के लिए काम में लाता हूँ पर वे मेरे ऊपर प्रभाव नहीं डाल सकती। पंच भूतों की गतिविध के कारण जो हलचलें संसार में हर घड़ी होती हैं वे मेरे लिए एक विनोद और मनोरंजक दृश्य मात्र हैं। मैं किसी भी सांसारिक हानि लाभ से प्रभावित नहीं होता। मैं शुद्ध, चैतन्य, सत्यस्वरूप पवित्र निलिप्त अविनाशी आत्मा हूँ। मैं आत्मा हूँ, महान् आत्मा हूँ। महान् परमात्मा का विशुद्ध स्फुलिङ्ग हूँ।

तीसरी भूमिका का ध्यान जब अभ्यास के कारण पूर्ण रूप से पुष्ट होजाय और हर घड़ी वही भावना रोम रोम में प्रतिभाषित होने लगे तो समझना चाहिए कि इस साधना की सिद्धावस्था प्राप्त होगई। यही जागृत समाधि या जीवन मुक्त अवस्था है।

सम्यक्त्व योग।

यह विश्व त्रिगुणात्मक है। स्थूल प्रकृति को हम तीन रूपों में देखते हैं। (१) ठोस (Solid) (२) तरल (Liquid) और (३) वायु (Gas) सृष्टि की समस्त स्थूल सम्पदा इन रूपों में ही है। (१) सत् (२) रज और (३) तम मनुष्यों के स्वभाव, चेतनायें, प्रवृत्तियां इन तीन विभागों में विभक्त हैं। विश्व की सूक्ष्म प्रक्रियाएं, संवेदनाएं इच्छा आकांक्षाएं इन तीनों के अन्तर्गत हैं। जब तक आत्मा जीवन धारण किये हुए हैं, जीव रूप में अवस्थित है, प्रकृति के साथ विचरण कररहा है तब तक इन तीन गुणों के साथ भी रहना पड़ता है। स्थूल शरीर में बात पित्त कफ प्रधान हैं और सूक्ष्म शरीर में सत रज, तम की प्रधानता है। यह तत्व समयानुसार न्यूनाधिक होते रहते हैं पर पूर्ण रूप से किसी का भी अस्तित्व नष्ट नहीं होता।

जैसे वात पित्त कफ तीनों ही शरीर के लिए आवश्यक हैं, उसी प्रकार चैतन्य जगत के लिए सत रज तम अनिवार्य हैं। इनमें कोई भला बुरा नहीं केवल उनकी विषमता अति दुखदाई है। वात, पित्त, कफ, तीनों में से कोई भी अत्यधिक या अतिन्यून होजाय तो वही अनिष्ट का कारण बन जाता है। जब वे अपनी अपनी, मात्रा मर्यादा और स्थिति के अनुसार संतुलित रहते हैं तो स्वास्थ्य ठीक रहता है, इस संतुलन में गड़बड़ी पड़ते ही मनुष्य बीमारी या मृत्यु की डाढ़ों के नीचे कुचलने लगता है। हमारे अन्तर्जगत् में भी सत, रज, तम की जिस अनुपात में आवश्यकता है यदि वह अनुपात बिगड़ जाता है तो मानसिक स्वस्थता नष्ट होने लगती है, आत्म शान्ति के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। इस लिए तीनों गुणों का समुचित संमन्वय हमारे बाह्य और आन्तरिक जीवन में होना चाहिए। किसी एक ही तत्व की अति का आत्मविद्या के तत्वज्ञों ने निषेध किया है भगवान बुद्ध ने श्रेष्ठ योग साधन 'मज्झिम मग्ग' अर्थात् मध्यम मार्ग पर चलना बताया 'मज्झिम निकाम' का भली प्रकार मनन करने से मध्यम मार्ग की श्रेष्ठता और आवश्यकता सहज ही समझ में आ जाती है।

हिन्दू धर्म में इन तीनों गुणों की समुचित उपासना करने का आदेश किया है। ब्रह्मा विष्णु, महेश, के रूप में त्रिदेवों का अधिष्ठान सत, रज तम का ही प्रतीक है। वेद का, ज्ञान का, अधिष्ठाता ब्रह्मा सतका प्रतीक है। लक्ष्मी पति शासक बैकुण्ठ लोकके वासी विष्णु कहते हैं रजोगुणका प्रतिनिधित्व त्रिशूल धारी, ताण्डव नृत्य करने वाले, तीसरे नेत्र से आग उगलते हुए रुद्र तमोगुण की प्रतिमा हैं। जिन साधकों ने प्रकृति को नारी के रूप में देखा है उन्होंने सत, रज, तम को सरस्वती लक्ष्मी एवं दुर्गा की छवि के साथ देखा है। इन सभी को हिन्दू दार्शनिकों ने उपास्य ठहराया है। तीनों ही गुण, जीवन के अभिन्न अंग हैं इसलिए उनका समुचित सदुपयोग सम्यक् समन्वय होना चाहिए यही त्रिदेव पूजा का आध्यात्मिक रहस्य है।

मोटी धारणाके अनुसार सत को ग्राह्य और तम को त्याज्य माना जाता है पर यह धारणा भ्रम मूलक है। तीनों का ही अपना अपना महत्व है तीनों की ही अपने अपने स्थान पर आवश्यकता है। हां मात्रा में अन्तर अवश्य होना चाहिए। सत की मात्रा सब से अधिक, रज की उससे कम, तम की उससे कम होनी चाहिए और तीनों का यथा स्थान यथा अवसर, विवेक पूर्वक उपयोग होना चाहिए। समत्व का एक अर्थ समता बराबरी है और दूसरा अर्थ सम्यकत्व (भली प्रकार यथोचित रीति से है) गीता के समत्व योग का वास्तविक तात्पर्य सम्यकत्व ही है। सब को समान समझने का अर्थ ब्राह्मण और कसाई को, राजा और गधे को, माता और पत्नी को पुत्र और पिता को एक समान समझना नहीं है, वरन् यह है कि सम्यक् रीति से भले प्रकार उन्हें समझा जाय। जो जैसा हो उसे वैसा ही समझा जाय।

सतो गुण हमारे जीवन में सब से अधिक होना चाहिए। प्रेम, करुणा, मैत्री, सेवा, सहायता दया निष्कपटता, उदारता, पवित्रता, त्याग एव संयम के भाव मन में अधिक मात्रामें चाहिए। इन भावों को चरितार्थ करने के लिए प्रयत्न शील रहना चाहिए। अधिकारी व्यक्तियों के प्रति विवेक पूर्वक उनका उचित उपयोग करना चाहिए।

रजो गुण का अर्थ है सम्पन्नता। जीवन को चतुर्मुखी विनाश के साधनों को सम्पन्नता कहते हैं। जैसे बिना कागज स्याही के पत्र नहीं लिखा जा सकता, बिना खांड के मिठाई नहीं बन सकती इसी प्रकार बिना साधनों के जीवन विकाश नहीं हो सकता स्वास्थ्य, विद्या, धन, प्रतिष्ठा मित्रता, चातुर्य, साहस यह सात सम्पन्नताएं आत्मोन्नति के लिए बड़ी आवश्यक हैं। अपने आपको बलवान,

सम्पन्न, समृद्ध, विकसित बनाना अपने निकटवर्ती व्यक्तियों को सम्पन्न बनाना जीवन की बहुत बडी आवश्यकता है। क्योंकि सत् की रक्षा और वृद्धि के लिए रज की जरूरत पड़ती है। जो स्वयं भूखा है, स्वयं अभाव ग्रस्त दीन दुखी है, विद्या बल, पुरुषार्थ; आदि से रहित है, उसके मन में उठने वाली सतोगुणी भावनाएं ग्रीष्म की बालू में उगने वाले अंकुरों की भांति मुरझा जाते हैं। रजोगुण से ऊपर उठ कर सतोगुण में पहुँचना सुगम है, क्यों कि उसे बहुत ही पास की मंजिल पर कदम धरना होता है।

तमोगुण क्रोध, अविश्वास, घृणा, हिन्सा, दुराव जैसे कार्यों में देखा जाता है। राक्षस पिशाच तस्कर पापी, निर्दय, लोक कंटक, आततायी, अनीति एवं भ्रान्ति फैलाने वाले लोगों की आत्मा से प्रेम करते हुए भी उनके स्थूल शरीर एव विकृति मन से घृणा करने की विरोध करने की, दंड देने की आवश्यकता होती हैं। इस दुनियां में अनीति के अनेकों शक्तिशाली केन्द्र हैं।

लोक कल्याण के लिए, उनसे आत्म रक्षा के लिए दुराव की, गुप्त मंत्रणा की एवं समाचार की जरूरत पड़ती है। भगवान वामन को राजा बलि के साथ, मोहनी रूपधारी विष्णु को भस्मासुर के साथ राम, को वालि के साथ ऐसा ही व्यवहार करना पड़ा था। आवश्यकतानुसार इस प्रकार की नीति भी अपनानी पड़ सकती है। अशान्ति को नष्ट करने वाली अशान्ति भी शान्ति कही जाती है। बच्चे के फोड़े को डाक्टर से चिर-वाते समय माता जिस प्रकार कठोर बन जाती है वैसे अवसर जीवन में आ सकते हैं। "भय बिनु होहि न प्रीति" 'वक्र चन्द्रहिं ग्रसे न राहू।' "लातों के देव बातों से नहीं मानते।" 'साधी उंगली घी नहीं निकलता।' जैसी उक्तियों से यह प्रकट है कि केवल सीधे मन से ही काम नहीं चल सकता। जैसे को तैसा। की नीति वरते जाने की जहां संभावना रहती है, वहां ही दुष्टों की दुष्टता पर प्रतिबन्ध लगता है। अपने आन्तरिक शत्रुओं के प्रति भी विरोध की, घृणा की, संघर्ष की प्रवृति सतेज किये बिना उनसे छुटकारा नहीं मिलता। इस प्रकार तमोगुण भी समयानुसार उचित मात्रा में उपयोगी होता है।

इन तीनों गुणों में से हर एक उचित एवं आवश्यक है। केवल उनकी अति तथा दुरुपयोग में ही दोष है। अति तो सतोगुण की भी बरी है। दुष्टों पर दया करने से सांप को दूध पिलाने से दुष्टता के विष की वृद्धि होती है। बिच्छू को पालना एक प्रकार से घर के बच्चों को डंक की तीव्र पीड़ा में झोकना है। भावकता वश किसी एक भिकारी को अपना सब कछ दे डाला जाय तो इसका अर्थ दूसरे दिन से ही अपने बच्चों को भिखारी बना देना होगा। घृणा और द्वेष करने योग्य व्यक्तियों से प्रेम निबाहा जाय तो वह धर्म विरोधी तत्वों को एक प्रकार की सहायता देना ही होगा। ऐसा सतोगुण की अति भी अनुचित है। रजोगुण की अति में मनुष्य लोभी कजूस तथा अहंकारी बनता है। तमोगुण के दुरुपयोग से हिंसा अनीति एवं पाप तापों की अभिवृद्धि होती है। सम्यकत्व का तकाजा है कि हम आन्तरिक स्वास्थ्य तथा सुव्य-वस्था को कायम रखने के लिए सत, रज, तम का भली प्रकार उचित रीति से उपयोग करें। इस मार्ग पर चल कर ही हम सुख शान्ति मय जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

सम्यकत्व योग की साधना।

अपने स्वभाव पर दृष्टि पात कीजिए कि आपमें किस तत्व की आवश्यकता से अधिक न्यूनता और आवश्यकता से ज्यादा अधिकता है। वह निरीक्षण पहले मोटे तत्व पर से आरंभ कीजिए। तमोगुण उचित मात्रा में है या नहीं? कहीं आप कायर डरपोक आलसी तो नहीं हैं? यदि यह बातें अधिक हों तो समझिए कि आपमें तमोगुण की मात्रा न्यून है। वीरता की कमी है। तब आपको

वीरता उत्पन्न करने की, तमोगुण बढाने की आवश्यकता है।

यदि आप निर्धन दरिद्र, मित्रों से रहित, बीमार, समाज में अप्रसिद्ध, साधन रहित, अशिक्षित बुद्धि स्वभाव के हैं तो आपको रजोगुण बढाने की आवश्यकता है।

यदि आप तोताचश्म प्रेम रहित अनुदार हैं। दान सेवा परोपकार, त्याग, संयम उपासना मम रुचि नहीं, तो समझिए कि आप में सतोगुण बढाने की जरूरत है।

इन तीनों में कौन तत्व आपमें अधिक कम है, यह भली प्रकार निरीक्षण के जिए। जो तत्व सब से कम हो, जिस कमी से जीवन यात्रा में अधिक असुविधा होतीहो उसे प्रथम हाथ में लीजिए। यदि सत तत्व कम हो तो ब्रह्म को रज कम हो तो विष्णु को, तम कम हो तो शिव को अपना इष्ट देव चुन लीजिए।

प्रातः सायं नियत समय पर साधना के लिए बैठिए। यदि सत कम है तो ब्रह्म का ध्यान कीजिए। मस्तिष्क के मध्य भाग में सहस्र दल कमल के ऊपर अवस्थित परम सात्विकता के पुंज, वेद ज्ञान के अक्षय भन्डार, विवेक वृद्ध, वृह्माजी का ध्यान कीजिए, आप उनके समीप नतमस्तक श्रद्धाभाव से बैठे हैं और वे अनन्त सात्विकता की की शुभ्रकिरणें आपके ऊपर फेंक रहे हैं। दाहिना हाथ उठा कर आपको प्रचन्ड सात्विक शक्तियों की अभिवृद्धि का बरदान दे रहे हैं। इस ध्यान को एकाग्र मन से दृढ़ कल्पना और पूर्ण श्रद्धा के साथ कीजिए।

यदि आप में रजोगुण कम है तो ध्यान कीजिए कि निखिल रजोगुण के प्रतीक श्री विष्णु भगवन् अतुलित वैभव वाले वैकुंठ लोक रत्नजटित स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान है। आप उनके दाहिनी ओर भक्तिभाव से बैठे हैं और वे आपके मस्तक पर हाथ फेर रहे हैं। उनकी कृपा दृष्टि द्वारा अतु[illegible]

आत्म निरीक्षण योग।

हानि कारक एवं विजातीय तत्व वहां एकत्रित होते हैं, जहां ढीलढाल या लापरवाही रहती है, चौकसी निगरानी देख भाल, जांच पड़ताल का अभाव रहता है। दाद अक्सर जंघाओं में होता है, कारण यह है कि शरीर के अन्य स्थानों की अपेक्षा जाँघों की सफाई कम होती है। स्नान करते समय भी वहां पूरी सफाई नहीं की जाती, धूप हवा से भी वहां स्थान वंचित रहता है, फल स्वरूप गंदगी के कीटाणु मजे में छिपे बैठे रहते हैं और अवसर पाकर दाद के रूप में प्रकट होते हैं। पूरी गहरी सांस न लेने के कारण फेफड़ों का कुछ हिस्सा निकम्मा पडा रहता है वहां विजातीय द्रव्य आसानी से जमा हो जाता है और क्षय सरीखे

यदि आप में तमोगुण कम है तो ध्यान कीजिए कि प्रलयकर शंकर लाल २ प्रज्वलित अग्नि जैसा तीसरा नेत्र खोल कर ताण्डव नृत्य कर रहे हैं। उनके नृत्य के साथ कड़कड़ाती विजली जैसी पीत वर्ण लपटें चारों ओर उठ रही हैं। आप उस नृत्य को देख रहे हैं। डमरू ध्वनि से आपके हृदय में बीरता की संहारिणी शक्ति का संचार हो रहा है। चारों ओर उठने वाली विजली की लपटें आपके शरीर में प्रवेश करके नव चेतना नवस्फूर्ति निरालस्यता उत्पन्न कर रही है। भगवान् शंकर प्रसन्नहोकर आपके चारोंओर डमरू बजाते हुएनृत्य कर रहे हैं और आपको अतुलित बल प्रदान कर रहे हैं।

यदि आप इष्ट देव को पुरुष वेष की अपेक्षा स्त्री वेष में दर्शन करना पसन्द करते हैं या स्वय स्त्री हैं। तो ब्रह्मा के स्थान पर सरस्वती का, विष्णु के स्थान पर लक्ष्मी का, शिव के स्थान पर दुर्गा का ध्यान कर सकते हैं। इन ध्यानों से जो तत्व आप में कम है वह निश्चित रूप से वृद्धि को प्राप्त होगा।

रोग उपज पड़ते हैं। घर के जिस भाग में नित्य झाड़ू नहीं लगती वहां मकड़ी, मच्छर, पिस्सू, कीड़े मकोड़े पलते रहते हैं और दुर्गन्ध आने लगती है। जो लोग दांतों की नित्य भली प्रकार सफाई नहीं करते उनके मुख से बदबू आने लगती है और दांत पीले पड़ जाते हैं। कहते हैं कि सुनसान, उजाड, जन शून्य खण्डहरों में भूत, पलीत, उल्लू चमगीदड़ छिपे रहते हैं। चोर, डाकू, लुटेरे, जुआरी प्रकृति के लोग अपना डेरा ऐसे स्थानों में जमाते हैं, जो जन साधारण की दृष्टि से ओझल हों। हिंसक पशु दिन में अपनी मांद में छिपे रहते हैं. जब रात हो जाती है तब चुपके-चुपके निकलते हैं और अपना काम बनाने के लिए चोट करते हैं।

यही स्थिति हमारे मन क्षेत्र में होती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, भय, शोक, द्वेष, ईर्षा, आलस्य, प्रमाद, व्यसन अहंकार, आदि अनेकों प्रकार के शत्रु मन क्षेत्र में घुस बैठते हैं और चुपके चुपके अपना बल बढाते रहते हैं। क्षय, दमा आतिशक, सुजाक कोढ, दाद, आदि रोगों के छोटे कीटाणु आरम्भ में किसी प्रकार मनुष्य के शरीर में घुस जाते हैं, और धीरे धीरे अपनी बंश बृद्धि करते रहते हैं कुछ समय में उनका अधिकार समस्त शरीर पर हो जाता है इसी प्रकार मन में घुसे हुए यह शत्रु निधड़क होकर अपना अड्डा जमा लेते हैं और मनुष्य की जीवन शक्तियों को चूस चूस कर परिपुष्ट होते रहते हैं। धीरे धीरे उनकी प्रबलता इतनी अधिक हो जाती है कि प्राणी अपने को उनके बन्धन से छूटना कठिन अनुभव करता है।

मानसिक क्षेत्रमें अवांछनीय तत्वों का, शत्रुओं का इतना प्राबल्य होजाने का कारण यह है कि इनको निधड़क बैठ जाने का अवसर मिलता है। हममें से अधिकांश व्यक्ति ऐसे हैं जो अपने अन्तर्जगत की चौकसी नहीं करते उसकी क्षति और सुरक्षा की परवा नहीं करते। इस प्रमाद का फायदा शत्रुओं को होता है। जिस गोदाम का कोई पहरेदार न हो उसमें चोरियों का होना निश्चित है। जिस खेत का कोई रखवाला न हो उसे पशु पक्षी उजाड़ेंगे यह निश्चत है। जब अन्तर्जगत की चौकसी छोड दी जाती है तो भी यही परिणाम होता है। बाहरी काम काज में, साज संभाल में, निर्माण उपार्जन में, लोग बड़े परिश्रम और प्रयत्न के साथ जुटे रहते हैं पर अन्तर्जगत की ओर वे बिलकुल उदासीन रहते है, इस सम्पदा की रक्षा और वृद्धि के लिए उनका तनिक भी ध्यान नहीं जाता उस ओर आंख उठा कर भी नहीं देखा जाता। आत्म चिन्तन के लिए, आत्म निरीक्षण और परीक्षणके लिए कोई बिले ही थोडा समय खर्च करते हैं। इस प्रकार की उपेक्षा के कारण, मैदान खाली देख कर हानिकारक कुप्रवृत्तियां और बासनाएं उठ खडी होती हैं और निरन्तर बढती, फलती फूलती तथा परिपुष्ट होती रहती है। जिस खेत को जुताई, सिचाई नराई से संस्कारित नहीं किया जाता उसमें तर पतवार और जंगली झाड झंखाड जड जमा लेते हैं। जिस मनोभूमि को संस्कारित नहीं किया जाता उसमें अच्छी फसल नहीं उपजती वहाँ तो कुविचार और कुसंस्कारों का ही उत्पादन होता है।

इन सब बातों पर विचार करते हुए अध्यात्म विद्या के आचार्यों ने बताया है कि नित्य आत्म चिन्तन, आत्मनिरीक्षण, आत्म परीक्षण करना करना चाहिए। जिससे शत्रुओं की दाल न गलने पावे, मनः क्षेत्र में कुसंस्कार जड़ न जमा ने पावें। जिस घर में घर का मालिक एक बच्चा भी खांस रहा हो उसमें घुसने की बलवान चोर की भी हिम्मत नहीं पडती। घर में घुसे हुए चोर मालिक के जागने की आहट पाकर भाग खड़े होते हैं। क्योंकि असत्य स्वतः कमजोर होता है, कहते हैं कि "चोर के पांव नहीं होते।" जो सोता है जो खोता है, जो जागता है सो पाता है। अन्तर्जगत की चौकसी और [illegible]

चाहिए, प्रयत्न शील रहना चाहिए, ताकि उसमें से दुखदायी कससंस्कारों की जड़ें उखड़ जांय और सच्ची शान्ति का अमर कल्पवृक्ष लहलहाने लगे। उसकी छाया में हमारा भीतरी और बाहरी जीवन अखण्ड सुख शान्ति का रसास्वादन करें।

आत्म चिन्तन की साधना।

रात को सब कार्यों से निवृत्ति होकर जब सोने का समय हो तो सीधे चित्त लेट जाइए। पैर सीधे फैला दीजिए। हाथों को मोड कर पेट पर रख लीजिए। शिर सीधा रहे। पास में दीपक जल रहा हो तो बुझा दीजिए या मन्द कर दीजिए। नेत्रों को अध खुले रखिए।

अनुभव कीजिए कि आपका आज का एक दिन, एक जीवन था। अब जब कि एक दिन समाप्त हो रहा है तो एक जीवन की इति श्री हो रही है। निद्रा एक मृत्यु है। अब इस घडी में एक दैनिक जीवन को समाप्त करके मृत्यु की गोद में जा रहा हूँ।

आज के जीवन की अध्यात्मिक दृष्टि से समालोचना कीजिए। प्रातःकाल से लेकर सोते समय तक के कार्यों पर दृष्टिपात कीजिए मुझ आत्मा के लिए वह कार्य उचित था या अनुचित? यदि उचित था तो जितनी सावधानी एवं शक्ति के साथ उसे करना चाहिए था? उसके अनुसार किया या नहीं? बहुमूल्य समय का कितने भाग उचित रीति से, कितना अनुचित रीति से, कितना निरर्थक रीति से व्यतीत किया? यह दैनिक जीवन सफल रहा या असफल? आत्मिक पूंजी में लाभ हुआ या घाटा? सद्वृत्तियां प्रधान रहीं या असद्-वृत्तियां इस प्रकार के प्रश्नों के साथ दिन भर के कामों का निरीक्षण कीजिए।

जितना अनुचित हुआ हो उसके लिए आत्म देव के संमुख पश्चात्ताप कीजिए। भविष्य में भूल को न दहराने का निश्चय ही सच्चा पश्चात्ताप है। धन्यवाद दीजिए और प्रार्थना कीजिए कि आगामी जीवन में कल के जीवन में उस दिशा विशेष रूपसे अग्रसर करें। इसके पश्चात शुभ्रवर्ण आत्म ज्योति का ध्यान करते हुए निद्रा देवी की गोद में पूर्वक चले जाइए।

दूसरी साधना:—प्रातःकाल जब नींद पूरी तरह खुल जाय तो एक अंगडाई लीजिए। तान पूरे लम्बे सांस खींच कर सचेत होजाइए।

भावना कीजिए कि आज नया जीवन ग्रहण कर रहा हूँ। नया जन्म धारण करता हूँ। इस जन्म को इस प्रकार खर्च करूंगा कि आत्मिक पूंजी में अभिवृद्धि हो। कल के दिन पिछले जन्म में जो भूले हुई थी, आत्म देव के सामने जो पश्चाताप किया था, उसको ध्यान में रखता हुआ आज के दिन का अधिक उत्तमता के साथ उप-योग करूंगा।

दिन भर के कार्य क्रम की योजना बनाइए। इन कार्यों में जो खतरा सामने आने को है उसे विचारिए और उसे बचने के लिए सावधान हूजिए। उन कार्यों में जो आत्मलाभ होने वाला है वह और अधिक हो इसके लिए तैयारी कीजिए। यह जन्म यह दिन, पिछले की अपेक्षा अधिक सफल हो, यह चुनौती अपने आपको दीजिए और उसे साहस पूर्वक स्वीकार कर लीजिए।

परमात्मा का ध्यान कीजिए और प्रसन्न मुद्रा, में, एक चैतन्यता, ताजगी, उत्साह, साहस आशा एव आत्म विश्वास की भावनाओं के साथ उठ कर शय्या का परित्याग कीजिए। शय्या से नीचे पैर रखना मानो आज के नव जीवन में प्रवेश करना है।

———

× × × ×

दुनियां में बुराई की कालिमा अधिक है पर वह भलाई की उज्वलता से अधिक नहीं है। यदि यहां भलाई की अपेक्षा बुराई अधिक होती तो कोई

भूत साधना से आत्म विजय

कितने ही मनुष्यों की विचार प्रणाली ऐसी विकृति हो जाती है कि वे अपने मस्तिष्क में दौड़ने वाले विचार प्रवाह को रोकने में समर्थ नहीं हो पाते। किसी से झगड़ा हुआ, झगड़ा होने के बाद दोनों पक्ष अलग होगये पर विकृति विचार प्रणाली वाले मनुष्य का मस्तिष्क उसी में उलझा रहता है। दिमाग में भारी उत्तेजना एवं गर्मी भर जाती है जिसके कारण सिर भन्नाने लगता है। उस समय कितना ही आवश्यक कोई कार्य सामने हो मस्तिष्क उस उत्तेजना को छोड कर नये प्रश्न पर विचार करने के लिए तैयार ही नहीं होता। बुद्धि कहती है कि "जो होना था होगया, छोटी सी बात पर इतना उलझना ठीक नहीं, चलो दूसरी बात पर विचार करें।" पर वह विचार प्रवाह हटता नहीं बराबर वही उत्तेजना शिर के भीतर गूंजती रहती है। रात को पूरी नींद नहीं आती शिर में दर्द होने लगता है। आंखों में गर्मी छा जाती है पर उस उत्तेजना से पीछा नहीं छूटता।

इसी प्रकार कितने ही व्यक्ति, चिन्ता, शोक, ईर्षा, अहंकार, द्वेष, लोभ आदि के कविचारों में बरी तरह डूबे रहते हैं। वे इन विचारों को छोडना चाहते हैं पर वे छूटते नहीं। लौट लौट कर वह बातें दिमाग में भर जाती हैं। यह दूषित विचार प्रणाली का परिणाम है। यह एक प्रकार का भयङ्कर बन्धन है। जिसमें बंधा हुआ मनुष्य विवश होकर कहीं का कहीं घिसटता फिरता है। इस विचारों की गुलामी से छुटकारा पाये बिना आन्तरिक शान्ति प्राप्त होना कठिन है।

विचारों पर हमारा आधिपत्य होनी चाहिए। जब जिस विचार को हम चाहें अपने मस्तिष्क में विचार करने दें और जब चाहें जिस विचार को निकाल बाहर करें यह स्थिति प्राप्त करना अध्यात्म क्षेत्र के पथिकों के लिए बडा आवश्यक है। पाना है। एकाग्रता—मानसिक उन्नतिका सर्वोपरि हथियार है। मैस्मरेजम में दूसरों को निद्रा में लाने का प्रधान साधक एकाग्रता पूर्वक तीव्र दृष्टिपात ही तो है। ध्यान में एकाग्रता ही मुख्य है। समाधि एकाग्रता की ही सिद्धावस्था है। व्यापारी, वैज्ञानिक, कवि, चित्रकार, नट, लेखक, विचारक, शिल्पकार कलाकार सरीखेके प्रतिभाशाली वर्गों के सफल व्यक्ति एकाग्रता के ही प्रभाव से अपनी प्रतिभा चमकाते हैं। जिसमें एकाग्रता नहीं वह मानसिक क्षेत्र में कोई महत्व पूर्ण कार्य नहीं कर सकता।

बारूद को जमीन पर फैला कर उसमें आग लगाई जाय तो वह भक् से जल कर समाप्त हो जायगी। पर उसी बारूद को बन्दूक की नली में रखकर केवल एक नियत दिशा में ही चलने दिया जाय तो वह भयङ्कर शब्द और प्राण घातक चोट करती है। विचार भी यदि बिखरे रहें अस्त व्यस्त रहें, तो उनका कोई महत्व नहीं, पर जब वे एक स्थान पर केन्द्रित किये जाते हैं तो एकाग्रता की शक्ति के साथ गजब के परिणाम उपस्थित करते हैं। एकाग्र मन जिधर में लगजाता है उधर ही सफलताओं का ढेर लग जाता है।

विचारों पर काबू पाना ही मन को वश में करना कहलाता है। पातञ्जलि ने चित्त वृत्तियों के निरोध को योग कहा है। जिसने अपने मन के ऊपर विजय प्राप्त करली समझिए कि उसने संसार के ऊपर विजय प्राप्त करली। महापुरुषों में यही विशेषता होती है कि वे विचारों के प्रवाह में नहीं बहते वरन् जिधर चाहते हैं उधर विचारों को बहाते हैं। जब चाहते हैं तब विचारों के प्रवाह को मोड देते हैं, बदल देते हैं पलट देते हैं एवं बन्द कर देते हैं। महात्मागांधी को बडी गंभीर गुत्थियां सुलझानी पडती हैं, उनके आगे कभी कभी बडी विकट चिन्ताजनक समस्याऐं आती हैं उनके कन्धे पर हर घडी जिम्मेदारियों का भारी बोझ रहता है पर वे जब चाहते तब विचारों के प्रवाह

लेते हुए यदि कुछ मिनटों का समय मिल जाता है तो वे इतनी ही देर में गहरी नींद सो लेते हैं। नैपोलियन युद्ध क्षेत्र में घमासान करते समय कुछ देर के लिए घोड़े को पेड़ के सहारे लगा कर और देह को पेड़ का सहारा देकर सो लेता था। विचारों पर हमारा ऐसा ही अधिकार होना चाहिए। घुड़सवार लगाम मोड़ कर अपने घोड़े को मन चाही दिशा में ले जाता है विचार पर भी हमारा ऐसा ही आधिपत्य होना आवश्यक है।

मनोनिग्रह, विचार संयम, चित्त निरोध, एकाग्रता की साधना से एक बड़ी आध्यात्मिक समस्या का हल हो जाता है जहां चाहें वहां मन लगा देना और जहां चाहे वहां से मन हटा लेना यह एक ऐसी सिद्धि है जिसके द्वारा शोक, क्रोध, चिन्ता, भय, काम, निराशा, आवेश आदि अवाछनीय स्थिति से मन हटा कर समस्त मानसिक दुखों का अन्त किया जा सकता है। इस संसार में तीन चौथाई दुख मानसिक और एक चौथाई दुख शरीरिक हैं। शारीरिक दुख को भी तब मनुष्य भूल जाता है जब उसका चित्त किसी आनन्ददायक विचारधारा में रमण कर रहा हो। जिसका मन काबू में है जिसका आहार विहार संयमित है उसे वैसे भी शारिरिक कष्टों में नहीं पड़ना पड़ता। पर यदि कदाचित् किसी कोई प्रारब्ध भोग का कष्ट आ भी पड़े तो उसे संतुलित चित्त वाला व्यक्ति आसानी हंसी हँसी में ही सहन कर लेता है। इस प्रकार सांसारिक दुखों से छुटकारा पाकर मनोनिग्रही आत्मानन्द का सुखोपभोग करता है। हर घड़ी विपरीत, परिस्थितियों में रह कर भी—उसकी आन्तरिक शान्ति नष्ट नहीं होती।

मनोनिग्रह की साधना।

मन का स्वभाव कुछ न कुछ काम करने का है। वह बेकार कभी नहीं बैठता हर वक्त उसे कुछ न कुछ कार्य चाहिए। इस लिए मन को अन्य दिशाओं से रोक कर पांच ज्ञानेन्द्रियों के पांच विषयों पर लगाया जाता है। कान, आंख, जिव्हा, नाक, त्वचा यह पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं—इनके कार्य क्रमशः शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श को अनुभव करना है। यह पांचों अनुभूतियां पांच तत्वों से भी सम्बन्धित है। आकाश से शब्द; तेज से रूप, जल से रस, पृथ्वी से गन्ध और वायु से स्पर्श का भान होता है। मन को इन पांचों की अनुभूतियों में एक विशेष विधि से लगाने की साधना द्वारा उसका संचय हो सकता है। अब क्रमशः पांचों साधना संक्षिप्त रूप से आगे लिखी जाती है।

शब्द-साधनाः—कबीर पंथ और राधा स्वामी मत में शब्द साधना की बड़ी मान्यता है। नाद विन्दोपनिषद में इस नाद योग का विस्तृत वर्णन है।

जायफल का चूर्ण, मोम और थोड़ी कस्तूरी मिला कर उसे लाल रेशम की दो छोटी छोटी गोली जैसी पोटलियों में बांध लेना चाहिए। यह पोटली इतनी बड़ी होनी चाहिए कि कान में बोतल के कार्क की तरह फिट हो जावें और भीतर हवा जाने को पथ न बचे। कोई कोई साधक इन पोटलियों की बजाय, तुलसी या चन्दन की लकड़ी, बोतलों के कार्क रुई या उँगलियों का प्रयोग करते हैं। प्रचीन प्रथा तो रेशम की पोटली की है। पर सुविधानुसार अन्य चीजों से भी काम लिया जा सकता है। साधना के बाद इन्हें निकाल कर ठीक तरह से साफ कर लेना जरूरी है जिससे कि कान का मैल उससे चिपका रह कर गन्दगी की वृद्धि न करे।

इस साधना के लिए रात्रि का निस्तब्ध कोलाहल रहित समय अधिक उत्तम है। शुद्ध होकर शान्ति पूर्वक ऐसे सुविधा जनक आसन पर बैठिए जिसे कष्ट के कारण साधना समय के बीच में फिर न बदलना पड़े। गोली, पोटली, कार्क, रुई या उँगली लगा कर कान के छेदों को बन्द कर लीजिए ताकि बाहर के शब्द कानों के भीतर न पहुंचने पावें। नेत्रों को बन्द कर लीजिए। मेरुदन्ड सीधा रखिए।

"ओ३म्" की ध्वनि लहरों पर चित को एकाग्र कीजिए। जैसे घड़ियाल में थोड़ी मार देने पर कुछ देर तक उसमें से थर थराती हुई शब्द ध्वनि निकलती रहती है। इसी प्रकार की ओं ओं····· ओं····· ओं····शब्द ध्वनि आपके मनः लोक में गुंजित हो रही है। इस प्रकार की भावना श्रद्धा एव गम्भीरता के साथ कीजिए।

कुछ समय पश्चात् कई प्रकारकी शब्द ध्वनियां सूक्ष्म कर्णेन्द्रिय द्वारा सुनाई पड़ेगी, आंधी चलने रेल दौड़ने, झींगुर बोलने, घन्टियां मृदङ्ग, शङ्ख, बजने, सितार झनझनाने, बादल गरजने एवं बंशी बजाने जैसे शब्द सुनाई पड़ते हैं।

सब साधकों को एक जैसी ये शब्द ध्वनियां सुनाई नहीं पड़ती। कारण यह है कि विभिन्न साधकों की मानसिक स्थिति भिन्न होती है। सतोगुणी स्वभाव वालों को मन्द, समरस, मृदुल शब्द, सुनाई पड़ते हैं। रजोगुणो को तीव्र, स्वर के, गम्भीर शब्द सुनाई देते हैं। तमोगुणी को कर्कश, अस्थिर भयङ्कर, डराने वाले शब्दों का अनुभव होता है।

इन शब्द ध्वनियों को आरम्भ में पन्द्रह मिनट तक सुनना चाहिए। फिर क्रमशः एक एक मिनट बढ़ा कर सुविधा नुसार अधिक से अधिक दो घन्टे तक किया जा सकता है। जो ध्वनि सुनाई पड़े उसे सुनने में मन को पूरी तन्मयता के साथ लगाना चाहिए ताकि वह बीच बीच में इधर उधर न दौड़े।

रूप साधना—रूप साधना के लिए त्राटक का अभ्यास किया जाता है। त्राटक दो प्रकार के होते हैं बाह्य और अभ्यन्तरिक। दोनों की साधना नीचे लिखी जाती है।

(१) वाह्य त्राटक—किसी बिन्दु पर दृष्टि जमाने को कहते हैं। सफेद चिकने चमकदार कागज के एक चौकोर टुकड़े पर ठीक बीचों बीच एक रुपये के बराबर गहरीकाली स्याहीसे गोला अङ्कित कीजिए इस गोले के बीचों बीच सफेद बिन्दु रहने दिया जाय।

मेरुदन्ड को सीधा रख कर स्वस्थचित्त होकर, पद्मासन पर अथवा अर्धपद्मासन पर (पालथी मार कर) बैठिए। उपरोक्त काले गोले को नेत्रों की सीध तीन फुट के फासले से दीवार पर टाँग लीजिए। काले गोले के बीच के सफेद बिन्दु पर दृष्टि जमाइए। पलक मारते रहने में कुछ हर्ज नहीं पर दृष्टि बिन्दु पर से न हटे। आंखें न तो बहुत अधिक खोली जांय न पलक सकोड़े जांय, दृष्टि पात बहुत हलका हो और न बहुत जोर लगाया जाय। मध्यम स्थिति में यह साधन करना चाहिए। यह साधन स्वस्थ नेत्र वालों को ही करना चाहिए। जिनकी आंखों में कोई रोग है उनके लिए त्राटक करना वर्जित है।

एक टक दृष्टि जमाने से कुछ ही देर में गोले के बीच का सफेद बिन्दु हिलता जुलता घटता बढ़ता कांपता थर थराता तथा रङ्ग बदलता दीखने लगता है। यह सब होने पर भी दृष्टि हटानी न चाहिए। कुछ दिनों के अभ्यास से बिन्दु स्थिति हो जाता है। यह इस साधना की परिपक्वावस्था का चिन्ह है। साधन दो मिनट से आरम्भ करके एक एक मिनट नित्य बढ़ाना चाहिए। आंखों में पानी भर आवे तो त्राटक अवश्य ही समाप्त कर देना चाहिए।

चन्द्रमा पर, घी के दीपक की शिखा पर, शालिग्राम या शिवलिंग के अग्रभाग पर, इष्ट देव के चरण नख या किसी अङ्ग विशेषके बिन्दु परभी यह साधन किया जा सकता है।

(२) आभ्यन्तरिक त्राटक के लिए नेत्र बन्द करके साधना पर बैठना चाहिए। दोनों कानों के छिद्रों बीच में एक सीधी रेखा खींची जाय और भ्रू मध्य भाग से लेकर शिर के पीछे की ओर एक रेखा खींची जाय तो यह दोनों रेखाऐं आपस में जहाँ मिलती हैं वहां त्रिकुटी ब्रह्म रंध्र या सहस्त्र कमल का स्थान है। इस स्थान पर शान्त चित्त से ध्यान जमाने पर एक छोटा सा प्रकाश बिन्दु दृष्टिगोचर होता है। कुछ दिन के बाद एक के स्थान पर अनेक तथा लाल, पीले हरे, काले, विभिन्न वर्णों के

विभिन्न आकृतियों के विन्दु मस्तक के भीतर चारों ओर उड़ते हुए दिखाई देते हैं। दीर्घ कालीन सतत अभ्यास से वे बिखरे हुए विभिन्न आकार प्रकार के विन्दु उस मूल विन्दु में लय होने लगते हैं और अन्त में एक ही शुभ्र ब्रह्म ज्योति रह जाती है। इसके दर्शन से अन्तः प्रदेश में बड़ी आनन्द दायक शान्ति वर्षा होती है।

रस साधना—जो फल आपको खाने में सबसे अधिक स्वादिष्ट लगता हो उसे इस साधना के लिए लीजिए जैसे आपको कलमी आम अधिक रुचिकर है तो उसके पांच छोटे टुकड़े लें। एक टुकड़ा लेकर जिह्वा के अग्रभाग पर एक मिनट तक रखे रहें और उसके स्वाद का अनुभव करें। फिर इस टुकड़े को फेंकदें और उस पूर्व स्वाद का ध्यान करें बिना आम के आम का स्वाद जिव्हा को होता रहे। दो मिनट में वह अनुभव शिथिल होने लगेगा फिर दूसरा टुकड़ा जबान पर रखिए और पूर्ववत् उसे फेंक कर आम के स्वाद का अनुभव कीजिए इस प्रकार पांच बार करने में पन्द्रह मिनट लगते हैं।

धीरे धीरे जिव्हा पर कोई वस्तु रखने का समय कम करना चाहिए और बिना इस वस्तु के रस अनुभव करने का समय बढ़ना चाहिए। कुछ समय पश्चात बिना किसी वस्तु को जीभ पर रखे भी केवल भावना मात्र से इच्छित वस्तु का पर्याप्त समय तक रसास्वादन किया जा सकता है।

गन्ध साधनाः—नासिका के अग्रभाग पर त्राटक करना इस साधना के लिए आवश्यक है। दोनों नेत्रों से एक साथ नासिका के अग्रभाग पर त्राटक नहीं हो सकता इस लिए एक मिनट दाहिनी ओर तथा एक मिनट बांई ओर करना उचित है। दाहिने नेत्र को प्रधानता देकर उससे नाक के दाहिने हिस्से को और फिर बांए नेत्र को प्रधानता देकर बांए हिस्से को गम्भीर दृष्टि से देखना चाहिए आरम्भ एक एक मिनट से करके अन्त में पांच पांच मिनट ... त्राटक से नासिका की सूक्ष्म शक्तियां जागृत होती हैं।

इस त्राटक के बाद कोई सुगन्धित तथा सुन्दर पुष्प लीजिए। उसे नासिका के समीप ले जा कर एक मिनट तक धीरे धीरे सूंघिए और उसकी गन्ध का भली प्रकार स्मरण कीजिए। इसके बाद फूल को फेंक दीजिए और बिना फूल के ही उस गन्ध को दोमिनटतक स्मरण कीजिए। इसके बाद दूसरा फूल लेकर फिर इसी क्रम की पुनरावृत्ति कीजिए। पांच फूलों को पन्द्रह मिनट प्रयोग करना चाहिए। स्मरण रहे कम से कम एक सप्ताह एक ही फूल प्रयोग होना चाहिए। इसी प्रकार रस साधना में एक फल एक सप्ताह तक प्रयोग होना चाहिए।

स्पर्श–साधना—(१) बर्फ या कोई अन्य शीतल वस्तु, शरीर पर एक मिनट लगा कर फिर उसे हटाले और दो मिनट तक अनुभव करें कि वही ठन्डक मिल रही है। सह्य उष्णता का गरम किया हुआ पत्थर का टुकड़ा शरीर से स्पर्श करा कर उसकी अनुभूति कायम रखने की भावना करनी चाहिए। पङ्खा झल कर हवा करना, चिकना कांच का गोला या रुई की गेंद त्वचा पर स्पर्श कर के फिर उस स्पर्श को ध्यान रखना भी इसी प्रकार का अभ्यास है। ब्रस से रगड़ना, लोहे का गोला उठाना जैसे अभ्यासों की भी इसी प्रकार ध्यान भावना की जा सकती है।

(२) किसी समतल भूमि पर एक बहुत ही मुलायम गद्दा बिछा कर उस पर चित्त लेट रहिए कुछ देर इसकी कोमलता का स्पर्श सुख अनुभव करते रहिए इसके बाद बिना गद्दा की कठोर जमीन या तख्त पर लेट जाइए। कठोर भूमि पर पड़े रह कर कोमल गद्दे के स्पर्श की भावना कीजिए फिर पलट कर गद्दे पर आजाइए और उस कठोर भूमि की कल्पना कीजिए। इस प्रकार भिन्न परिस्थित में भिन्न वातावरण की भावना करने से तितीक्षा की सिद्धि मिलती है। स्पर्श साधना में सफलता प्राप्त करने पर शारीरिक कष्टों

उपवास-साधना।

साधनाओं में उपवास का महत्व पूर्ण स्थान है। प्रायश्चित्यों के लिए तथा आत्म शुद्धि के लिए उपवास सर्वोत्तम साधन माना जाता है। किसी शुभ कार्य को आरम्भ करते हुए प्रायः उपवास का आश्रय लिया जाता है। कन्यादान के दिन माता पिता उपवास रखते हैं। यज्ञोपवीत व्रतबन्ध, समावर्तन, वेदारम्भ आदि संस्कारों के दिन ब्रह्मचारी को उपवास रखना आवश्यक है। अनुष्ठान के दिन में यजमान तथा आचार्य को उपवास रखना होता है। नवदुर्गा के नौ दिन कितने ही स्त्री पुरुष पूर्ण या आंशिक उपवास रखते हैं।

भूल, अपराध, पाप अथवा न करने योग्य कार्य हो जाने पर उपवासों द्वारा प्रायश्चित्य किया जाता है। आत्म बल बढ़ाने के लिए, आन्तरिक पवित्रता में अभिवृद्धि करने के लिए उपवास एक अचूक अस्त्र है। विश्व विभूति महात्मा गांधी ने अपने जीवन में कई बार उपवास का आश्रय लिया है। उन्होंने इक्कीस इक्कीस दिन के उपवास किये हैं। सत्याग्रह के रूप में एक महान् अस्त्र के रूप में भी उपवास किया जाता है। वीर यतीन्द्रनाथ दास, देशभक्त मेक्स्विनी जैसी आत्माओं ने निराहार रह आत्म विसर्जन किया था। भगवान् बुद्धि और भगवान् महावीर ने अपने जीवन में लम्बे-लम्बे उपवास किये थे, और उस तपश्चय के प्रताप से आत्मा दर्शन करने में सफल हुए थे।

उपवास के सङ्कल्प के साथ साथ सात्विकता की तरङ्गें अन्तःकरण में उठना आरम्भ होती हैं और रजोगुण तमोगुण की कमी होने लगती है। गीता कहती है कि—'निराहार रहने से विषय निवृत्त होते हैं।" शुभ कर्मों के लिए सात्विकता की अधिकता आवश्यक है इस लिए प्रत्येक धर्म कृत्य के साथ उपवास को सम्बन्धित रखा गया है। आवेशों का उफान भूखे रहने पर घट जाता है। विषय विकारों का हलका पड़ना है और भवताप से पीड़ित मनुष्य को इस महौषधि द्वारा तुरन्त पवित्रता की शीतलता अनुभव होने लगती है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से उपवास का असाधारण महत्व है। रोगियों के लिए इसे एक प्रकार की जीवन मूरि ही कह सकते हैं। चिकित्सा शास्त्र का रोगियों को एक दैवी उपदेश है कि—"बीमारी का भूखा मारो" भूखे रहने से बीमारी मर जाती है और रोगी बच जाता है। सक्रामक कष्ट साध्य, खतरनाक रोगों में स धन ही एक मात्र चिकित्सा है। मोतीझरा, निमोनियां, त्रिशूचिका, प्लेग, सन्निपात, टाइफाइड, जैसे रोगों में कोई भी चिकित्सा उपवास का आश्चर्य हटाने का साहस नहीं कर

उपरोक्त पांचों साधनाओं को एक साथ ही किया जाय यह आवश्यक नहीं। जिनके पास साधना के लिए थोड़ा समय है वे इन में से किसी एक दो साधनाओं को अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार चुन सकते हैं। उसमें सफलता मिलने पर अन्य साधनाओं को हाथ में लिया जा सकता है।

इस साधनाओं से मन वश में होता है, चित्त वृत्तियों का निरोध होता है और विचारों पर काबू होता है। योग के समस्त साधनों का यही उद्देश्य है। एकाग्रता की सफलता तथा आत्म विजय जीवन की सब से बड़ी सफलताएं हैं। इनके आधार पर मनुष्य अपनी इच्छानुसार जो चाहे सो बन सकता है जो चाहे सो कर सकता है। इन्द्रियों की सूक्ष्म शक्ति से अनेकों प्रकार की सिद्धियां मिलती हैं, वे इन्द्रिया वस्तुओं के आधार पर नहीं वरन् इच्छा के आधार पर संसार के समस्त सुखों को अनुभव कर लेती हैं। भोगी लोग जिन भौतिक भोगों के लिए मृग तृष्णा में मारे मारे फिरते हैं वे सब योगियों के करतल गत होते हैं। सङ्कल्प शक्ति से वे सब सुख उनके सामने आकर खड़े हो जाते हैं।

सकता। प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान तो समस्त पूर्ण या आंशिक उपवास को ही सर्व प्रधान उपचार बताता है। इस तथ्य को हमारे माननीय ऋषिगण भी भली प्रकार जानते थे। इसलिए उन्होंने धार्मिक कृत्यों में इस साधना को बड़ा महत्व दिया है। एकादशी, रविवार, अमावस्या पूर्णमासी चतुर्थी प्रभृति व्रत हर महीने निश्चित है। इसके अतिरिक्त हर महीने दो चार विशेष व्रत भी होते हैं, इनके लम्बे चौड़े महात्म्यों का उल्लेख पुराणों में मिलता है। इन महात्म्यों का इतना आकर्षक वर्णन इसलिए है कि लोगों की रुचि इस ओर आकर्षित हो और वे उपवास के द्वारा प्राप्त होने वाले शरीरिक तथा आत्मिक लाभों को उठावें।

अध्यात्म मार्ग के पथिकों के लिए उपवास साधना को अपनाना आवश्यक है। इसमे उनके आत्मिक दोष घटते और आत्म बल बढ़ता चले। उपवास तीन प्रकार के होते हैं (१) दैनिक (२) नियत कालीन (३) विशिष्ट। इन तीनों का विवेचन नीचे किया जाता है।

दैनिक उपवास—नित्य जो अन्न ग्रहण किया जाता है वह उपवास के स्वल्पहार की तरह हो। जिस दिन उपवास होता है उस दिन बीच में कुछ स्वल्पाहार किया जाता है उसके लिए सात्विक, नमक आदि स्वादिष्ट मिश्रणों से रहित आहार लिया जाता है। दैनिक उपवास करने वाले को दोपहर को एक वार पूर्ण आहार अन्नाहार लेना चाहिऐ। उसमें मिर्च मसालों का पूर्ण रूपेण त्याग रहे। केवल नमक लिया जा सकता है। मीठा लेना हो तो बहुत थोडा लेना चाहिए। रोटी में कई अनाजों का मिश्रण न हो एक ही किस्म का अन्न होना चाहिऐ। रोटी के साथ दूध, दही, छाछ, दाल, साग में से कोई एक चीज ली जा सकती है। कई दालों का, कई सागों का मिश्रण या थाली में कई प्रकार के पदार्थों का होना ठीक नहीं। चांवल, दलिया खिचड़ी आदि के स्वरूप में भी यही

हो। भोजन अपने हाथसे बनाया जा सके तो सबसे अच्छा नहीं तो ऐसे विश्वस्त व्यक्ति द्वारा बनाया हुआ तो होना ही चाहिए जो सात्विक प्रकृति का और शुद्ध चरित्र का हो। कारण यह है कि भोजन बनाने वाले की मनोवृत्तियों का आहार पर बडा भारी प्रभाव पडता है और उसे खाने वाले के मन में भी वैसे ही भाव उत्पन्न होते हैं।

शाम को अन्नाहार न लेकर फल एवं दूध लिया जा सकता है। दैनिक उपवास रखने वालों को केवल एक कालिक आहार पर रहने की आवश्यकता नहीं है। यदि साधक बालक या श्रम जीवी है तो प्रातःकाल भी दूध ले सकता है।

बासी, बुसा, घी, तेल में तला हुआ, गरिष्ठ, बहुत अधिक जलाया या भुना हुआ, मिर्च मसाले खटाई, मिठाई से सराबोर आहार त्याज्य है। इस प्रकार विवेक पूर्वक जो सात्विकता प्रधान आहार लिया जाता है वह फलाहार स्वल्पाहार के समान है। इस प्रकार आहार करता हुआ मनुष्य उपवास के फल को ही प्राप्त होता है।

(२) नियत कालीन—किसी निर्धारित समय पर जो उपवास किये जाते हैं वे नियत कालीन कहलाते हैं। एकादशी, अमावस्या, पूर्णमासी, रविवार, शिवरात्रि, नवदुर्गा आदि नियत कालीन उपवास हैं। दैनिक की नियत कालीनों में अधिक कड़ाई वरती जाती है। इनमें एक ही वार फलाहार करना चाहिए। जो लोग दैनिक उपवास करने की स्थिति में नहीं हैं उन्हें नियत कालीनों को ही अपनाना चाहिए। समय समय पर निराहार रहने से पेट में संचित मलों का पाचन हो जाता है तथा मनोविकारों की शुद्धि होती रहती है। महीने में कम से कम दो उपवास तो अवश्य ही करने चाहिए इसके लिए दोनों पक्षों की एकादशियां या अमावस्या पूर्णमासी नियत कर लेनी चाहिए। यदि महीने में चार दिन सम्भव हो तो सप्ताह का कोई एक दिन [illegible]

(३) विशिष्ट—आत्म शुद्धि के लिए, अपराधों के प्रायश्चित्य स्वरूप अथवा किसी विशेष प्रयोजन के लिए जो उपवास किये जाते हैं। वे विशिष्ट कहलाते हैं। इनकी कोई मर्यादा नियत रहनी चाहिए। अपनी शक्ति और सामर्थ के अनुसार उनकी अवधि नियत करनी चाहिए। बिलकुल निराहार व्रत स्वस्थ अवस्था में एक दिन से अधिक न करना चाहिए। दूध या फलों का रस जैसी कोई चीज लेते रहना ठीक है।

उपवास सम्बन्धी कुछ आवश्यक नियम।

१—उपवास के दिन कड़ा शारीरिक या मानसिक परिश्रम नहीं करना चाहिए। उस दिन यथा सम्भव अधिक विश्राम लेना चाहिए।

२—उपवास के दिन खूब पानी पीना चाहिए बिना इच्छा के भी पीना चाहिए जिससे पेट अच्छी तरह धुल जावे। पानी के साथ नीबू या थोडा नमक भी मिला लिया जावे तो पेट की सफाई में और भी मदद मिलती है।

३—उपवास समाप्त करते ही गरिष्ट चीजें अधिक मात्रा में खाने से उलटी हानि होती है। इस लिए उपवास तोडते समय थोडी मात्रा में हलकी सुपाच्य चीजें लेनी चाहिए। जितने समय उपवास किया हो, उतने ही समय पीछे भी साधारण आहार पर धीरे धीरे आने में लगाना चाहिए।

४—उपवास काल में आवश्यकता होने पर सुपाच्य फल, शाक या दूध ही लेना चाहिए। गरिष्ठ पकवान या मिठाइयां खाना उपवास को व्यर्थ बना देता है।

५—उपवास काल में आत्म चिन्तन, ईश्वराराधन स्वाध्याय, सत्सङ्ग आदि सात्विकता बढाने वाले कामों में विशेष रूप से समय लगाना चाहिए।

आत्म नियंत्रण के लिए-व्रत

—:❀×❀:—

किसी सत कार्य को पूरा करने का सङ्कल्प व्रत कहलाता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि महाव्रत कहलाते हैं। धर्म चर्या प्रतिज्ञा लेना, उसे निबाहना व्रत है। अनेक दिशाओं में बिखरी हुई इच्छाओं को एकत्रित करके एक कार्य में लगाने के लिए तथा उस कार्य में जागरुक रहनेके लिए व्रत लिएजाते हैं। व्रत एक सङ्कल्प है जिसे लेकर मनुष्य अपने ऊपर एक स्वेच्छा उत्तर दायित्व लेता है। यह उत्तरदायित्व व्रत की प्रतिज्ञा के आधार पर पालन होता रहता है।

मन की मूल प्रवृत्तियां बडी स्वच्छन्द हैं वे बार २ इधर उधर भागती हैं। नित नये परिवर्तन, चंचलता तथा, अस्थिरता में मन को बडा रस आता है। भौंरा एक फूल से दूसरे पर उडता फिरता है, मन जङ्गली घोड़े की तरह जहां तहां उछल कूद मचाना अधिक पसन्द करता है। किसी एक बात पर डटा रहना उसे रुचि कर नहीं होता। यदि स्वभाव को ज्यों का त्यों रहने दिया जाय तो किसी एक विचार पर स्थिर रहना या एक कार्य में जुटा रहना कठिन है। कितने ही मनुष्य जिन्होंने अपनी प्रवृत्तियों का नियंत्रण नहीं किया है अपने विचार और कार्य जल्दी जल्दी बदलते रहते हैं. फल स्वरूप उनका जीवन क्रम सदा अस्त व्यस्त रहता है किसी भी दिशा में उन्हें सफलता नहीं मिलती।

आत्मोन्नति के लिए जीवन क्रम को, विचार धारा को, कार्य प्रणाली को पूर्ण तथा नियन्त्रण में रखने की आवश्यकता है। यह नियन्त्रण ऐसा होना चाहिए कि कठिनाइयां आने पर भी निरवत पथ से विचलित होने का अवसर न आवे। इस आत्म नियन्त्रण की महत्व पूर्ण सफलता को प्राप्त करने के लिए सङ्कल्प को, प्रतिज्ञा का, व्रत का, लेना पडता है। जिह्वा के चटोरे पन पर उपवास

ब्रह्मचर्य द्वारा नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। "अमुक काम न करूंगा" या "इस मर्यादा के अन्दर करूंगा" इस प्रकार की कठोर प्रतिज्ञा करने से एक निश्चत सङ्कल्प की स्थिरता होती है। यदि धार्मिक भावनाओं के साथ, ईश्वर की साक्षी में यह प्रतिज्ञा की जाती है तो उसे व्रत" कहा जाता है। साधारण प्रतिज्ञाओं की अपेक्षा व्रत की शक्ति बहुत प्रबल होती है क्योंकि उसका अन्तःकरण के गहरे स्तल तक प्रभाव पडता है। साधारण प्रतिज्ञाऐं तो टूटती भी रहती हैं पर व्रतों में ईश्वर की कृपा से आम तौर से सफलता ही मिलती है। उनके टूटने के अवसर बहुत ही कम आते हैं।

व्रतों के साथ एक प्रकार की तपश्चर्या सम्बन्धित है। उनके द्वारा तितीक्षा का, कष्ट सहन का अभ्यास पड़ता है। नियत गति विधि से कोई धार्मिक कृत्य व्रतों के आधार पर बड़ी आसानी से चलते रहते हैं एक व्रत के सफलता पूर्वक पूरा हो जाने पर साधक का साहस बढ़ जाता है और अगले व्रतों के लिए वह अधिक दृढ़ हो जाता है। इसलिए आरम्भ छोटे व्रतों से किया जाता है। स्त्रियोंमें इस प्रकार के छोटे छोटे व्रतों का बहुत प्रचलन है। वे संक्रान्ति से कोई धार्मिक अनुष्ठान आरम्भ करती हैं। एक वर्ष पूरा हो जाने पर उस कर्मकाण्ड का सफलता पूर्वक पूर्ण हो जाने के उपलक्ष में कुछ दान पुण्य करती हैं।

मार्गशीर्ष का, माघ का प्रातःकालीन शीतल जल का स्नान शीत की तितीक्षा का व्रत है। भूमि पर शयन, मौन, उपवास, भोजन में से कुछ वस्तुओं का त्याग, प्रातःकालीन शीघ्र जागरण, नियत पूजन बन्दन, किया क्षेत्र की परिक्रमा, आहार विहार दिनचर्या एवं किसी पद्धति में किन्हीं विशेष बातों का सम्मिलित करना या त्याग करना, सर्दी गर्मी, भूख प्यास को सहना, एक प्रकार के तप है। इन्हें नियत समय पर धार्मिक भावनाओं के साथ आरम्भ और पूर्ण करना व्रत

व्रतों के अपनाने से आत्म बल बढता है। इस लिए आत्म मार्ग के पथिकों को समय समय पर शारीरिक, मन, वाणी व्यवहार और वस्तुओं सम्बन्धी व्रतों का पालन करते रहना चाहिए। कुछ समय तक के लिए जूता पहनना छोड़ देना, भूमि पर सोना, उपवास रखना, रात्रि जागरण, पैदल तीर्थ यात्रा, नमक छोड देना, सूर्य दर्शन के साथ भोजन करना, कम वस्त्रों का धारण, शीत ऋतु में प्रातः स्नान जैसे उपायों का अवलम्बन करते रहने से शरीर कष्ट सहिष्णु बनता है मौन, पूजन, आराधन, एकान्त सेवन, दान, परोपकार सत्सङ्ग, स्वाध्याय, ध्यान जैसे कार्यों से मानसिक क्षमता एकाग्रता बढती है। केवल सत्य ही बोलना, हिंसा न करना, धन का अधिक संचय न करना, काम सेवन अयुक्त मर्यादा से अधिक न करना। अन्योयोपार्जित धन से, कटुभाषण से बचना, आदि आत्मिक व्रतों से आत्म शक्ति बलवती होती है।

आत्म शुद्धि के लिए चन्द्रायण या अर्ध चन्द्रायण जैसे व्रत बहुत उपयोगी हैं। उनसे अनेक रोगों की अपने आप चिकित्सा भी हो जाती है। चन्द्रायण व्रत एक महीने के लिए होता है। जिस आदमी को आहार एक सेर का हो वह पूर्णमासी के दिन पूर्ण आहार करके प्रति दिन एक छटांक घटाता जाय और अमावश्या को बिलकुल निराहार रहे। फिर शुक्र पक्ष की प्रतिपदा से एक छटांक आरम्भ करके प्रति दिन एक छटांक बढाता जाय और पन्द्रह दिन में (अगली पूर्णमासी को) पूरे आहार पर पहुंच जावे। अर्ध चन्द्रायण इसका आधा होता है। पन्द्रह दिन में से सात दिन क्रमशः कम करे आठवे दिन निराहार रहे फिर उसी क्रम से बढा कर अगले सात दिन में पूर्ण आहार पर पहुँच जावे। नये साधकों को अर्ध चन्द्रायण ही सुगम पड़ता है।

व्रतों से साधक की आत्म शक्ति बढती है और और उसे वाह्य एवं आन्तरिक अनेक लाभों की उप-

सूर्य नमस्कार।

स्वास्थ्य को स्थिर रखने और बढाने के लिए व्यायाम की बडी आवश्यकता है। व्यायाम से मांस पेशियां, नाडी समूह, संधियां तथा अस्थियां मजबूत होती हैं, रक्त का संचार ठीक होता है। फेफड़े, हृदय, आमाशय, जिगर तथा आंतें अपना अपना काम भले प्रकार करते रहते हैं। चेहरे पर तेज, गहरी निद्रा, उदर की सफाई का बहुत कुछ आधार व्यायाम पर निर्भर है। इन कारणों से व्यायाम हमारे दैनिक जीवन में उतना ही महत्व पूर्ण है जितना अन्न जल और भोजन।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ऋषियों ने व्यायाम को योग विद्या प्रमुख में स्थान दिया है। अष्टांङ्ग योग साधना में यम नियम के बाद आसन का नम्बर आता है। आसन अपने ढङ्ग के अनोखे व्यायाम हैं। पहलवान जिन डंड, बैठक आदि कठोर व्यायामों को करते हैं, सर्व साधारण के लिए उपयोगी नहीं बैठते। जिनके शरीर मजबूत हैं जिनके आहार में घी दूध की पर्याप्त मात्रा रहती है, जिन्हें मानसिक संघर्ष में अधिक नहीं उलझना पडता उनके लिए पहलवान बनने वाले कठोर व्यायाम ठीक हैं। पर जिनकी ऐसी स्थिति नहीं हैं उनके लिए ऐसा व्यायाम होना चाहिए जो अङ्ग प्रत्यगों पर अधिक दवाव न डालें और लाभ की दृष्टि से जो सर्वाङ्ग पूर्ण है। ऐसे व्यायाम आसन ही हैं, शरीर में कुछ सूक्ष्म ग्रन्थियां होती हैं जिन पर आसनों के द्वारा विशिष्ठ प्रभाव पडता है। इस प्रभाव के कारण शारीरिक शक्ति वृद्धि होने के साथ साथ मानसिक तथा आत्मिक बल भी बढता है। आसनों का लाभ स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरों को मिलता है।

सर्व साधारण के लिए जो आसन बहुत ही उपयोगी हैं उनको क्रमबद्ध करके सूर्य नमस्कार की विशिष्ठ प्रणाली का आविष्कार हुआ है। इस एक साधना के अन्तर्गत [illegible] इसकी नियमित साधना करने से थोड़े ही दिनों में स्वास्थ्य का आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जाता है।

साधना विधि।

प्रातःकाल सूर्योदय समय के आस पास इस साधना को करने के लिए खड़े हूजिए। यदि अधिक सर्दी गर्मी या हवा हो तो हलका कपडा शरीर पर पहने, रहिए अन्यथा लगोट या नेकर के अतिरिक्त सब कपड़े उतार दीजिए। खुली हवा में या स्वच्छ खुली खिडिकियों के कमरे में कमर सीधी रख कर खड़े हूजिए। मुख पूर्व की ओर कर लीजिए। नेत्र बन्द करके हाथ जोड कर भगवान सूर्य नारायण का ध्यान कीजिए और भावना कीजिए सूर्य की तेजस्वी आरोग्य मयी किरणें आपके शरीर में चारों ओर से प्रवेश करती हुई आपको तेज और आरोग्य प्रदान कर रही हैं अब निम्न प्रकार क्रिया आरम्भ कीजिए।

१—पैरों को सीधा रखिए। कमर पर से नीचे की ओर झुकिये, दोनों हाथों को जमीन पर लगाइए। मस्तक घुटनों से लगे। यह हस्त पादासन है इससे टखनों का टांग,के नीचे के भागों का,जंघा का चूतडों का, पसलियों का, कन्धों के पृष्ट भाग तथा बांहों के नीचे के भाग का व्यायाम होता है।

२—शिर को घुटनों से हटाकर लम्बा श्वांस लीजिए। पहले दाहिने पैर को पीछे ले जाइए और पंजे को लगाइए। बाएं पैर को आगे की ओर मुड़ा रखिए। दोनों हथेलियां जमीन से लगी रहे। निगाह सामने और शिर कुछ ऊँचा रहे। इस से जांघों के दोनों भागों का तथा बांये पेडू का व्यायाम होता है। इसे एक पाद प्रसरणासन कहते हैं।

३—बांए पैर को भी पीछे ले जाइए। उसे दाहिने पैर से सटा कर रखिए। कमर को ऊंचा उठा दीजिए। सिर और सीना कुछ नीचे झुक जायगा।

यह द्विपाद प्रसरणासन है। इससे हथेलियों की सब नसों का, भुजाओं का, पैरों की उगलियों

४—दोनों पाँवों के घुटने, दोनों हाथ, छाती तथा मस्तक इन सब अङ्गों की सीध से रख कर भूमि से स्पर्श कराइए। शरीर तना रहे—कहीं लेटने की तरह निचेष्ट न हो जाइए। पेट जमीन को न छुए।

इसे अष्टाङ्ग प्रणिपातासन कहते हैं। इससे बाहों, पसलियों, पेट, गर्दन, कन्धे तथा भुजदंडों का व्यायाम होता है।

५—हाथों को सीधा खड़ा कर दीजिए। सीना ऊपर उठाइए। कमर को जमीन की ओर झुकाइए सिर ऊँचा कर दीजिए आकाश को देखिए। घुटने जमीन पर न टिकने पावें। पन्जे और हाथों पर शरीर सधा रहे। कमर जितनी मुड़ सकें मोड़िए ताकि धड़ ऊपर को अधिक उठ सके।

यह सर्पासन है। इससे जिगर का आंतों का तथा कन्ठ का अच्छा व्यायाम होता है।

६—हाथ और पैरों के पूरे तलवे जमीन से स्पर्श कराइए। घुटने और कोहनियों के टखने झुकने न पावें। कमर को जितनी हो सके ऊपर उठा दीजिए। ठोडी कन्ठ मूल में लगी रहे। सिर नीचा रखिए।

यह भूधरासन है। इससे गर्दन पीठ, कमर, कूल्हे, पिंडली, पैर तथा भुजदंडों की कसरत होती है।

७—यहां से अब पहले की हुई सूरतों पर वापिस आया जायगा। दाहिने पैर को पीछे ले जाइए। पूर्वोक्त नं० २ के अनुसार एक पाद प्रसरणासन कीजिए।

८—पूर्वोक्त नं० १ की तरह हस्त पादासन कीजिए।

९—सीधे खड़े हो जाइए। दोनों हाथों को ऊपर आकाश की ओर ले जाकर हाथ जोड़िए। सीने को जितना पीछे ले जा सकें ले जाइए। हाथ जितने पीछे जा सकें ठीक है। पर वे मुडने न पावें। यह ऊर्ध्व नमस्कारासन है इससे फेफड़े और हृदय का अच्छा व्यायाम होता है।

१०—अब उसी आरम्भिक स्थिति पर आजाइए। सीधे खड़े होकर हाथ जोडिए और भगवान सूर्य नारायण का ध्यान कीजिए।

यह एक सूर्य नमस्कार हुआ। आरम्भ पांच से करके सुविधा नुसार थोडी थोडी संख्या धीरे धीरे बढाते जाना चाहिए। व्यायाम काल में मुह बन्द रखना चाहिए। सांस नाक से ही लेनी चाहिए।

साधकों के कुछ नियम।

१—साधकों को सूर्योदय से कम से कम एक घन्टा पूर्व उठना चाहिए। और नित्य कर्म से निवृत्ति होकर साधना में लग जाना चाहिए। साधना के लिए सर्वोत्तम समय प्रातःकाल का ही है।

२—ऋतु और स्वास्थ्य अनुकूल हो तो स्नान करके साधना पर बैठना चाहिए। यदि सुविधा न हो तो हाथ पैर मुख धोकर कार्य आरम्भ कर देना चाहिए।

३—साधकों का आहार विहार सात्विक होना चाहिए। ब्रह्मचर्य का जिस हद तक अधिक पालन हो सके उतना ही अच्छा है।

४—रात्रि को जल्दी सो जाना आवश्यक है। अधिक रात्रि तक जगने वालों के लिए प्रातः जल्दी उठने में असुविधा होती है।

५—साधना का आसन माला आदि अलग रखने चाहिए उसे दूसरे लोग प्रयोग न करें। एक नियत स्थान अभ्यास के लिए चुन लेना चाहिए। रोज रोज जगह बदलना ठीक नहीं।

६—साधना काल में कम से कम वस्त्र शरीर पर रखने चाहिए। स्वच्छ वस्त्र ही शरीर पर रहें।

प्राणाकर्षण प्राणायाम।

—:ॐ:—

हृदय और मस्तिष्क शरीर के भीतर दो ऐसे प्रधान अङ्ग है जिन पर मनुष्य की जीवनी शक्ति एवं मानसिक स्वस्थता निर्भर रहती है। हृदय की गति में अवरोध होते ही मृत्यु निश्चित है। मस्तिष्क में विकार उत्पन्न होने पर विक्षिप्तता एवं पागलपन आ घेरता है। जिनके यह दोनों अङ्ग स्वस्थ हैं उनकी शारीरिक और मानसिक स्वस्थता कायम रहती है—बढती है। इन दोनों अङ्गों के परिशोधन और परिवर्धन के लिए प्राणायाम का व्यायाम है। इस व्यायाम से फेफड़े मजबूत रहते हैं और खांसी श्वांस क्षय आदि रोगों से सुरक्षा रहती है।

इतनी ही नहीं सूक्ष्म शरीर को भी प्राणायाम से बहुत लाभ पहुँचता है। उससे आत्म शक्ति बढती है। महर्षि पातंजलि ने योग दर्शन में कहा है:—

"किंच धारणा सुच योग्यता मनस" अर्थात् प्राणायाम से मन की एकाग्रता होती है। चंचल मन को बश में करने के लिए प्राणायाम का हथियार बहुत ही उपयुक्त सिद्ध होता है। वे और भी कहते हैं—"ततः क्षीयते प्रकाश वरणम्" २।५२ अर्थात् प्राणायामम से अन्धकार का आवरण क्षीण होता है। हृदय में अज्ञान और कुविचारों के कारण एक प्रकार का अन्धकार हो जाता है। प्राणायाम से आत्म ज्योति का प्रकाश जगता है और इससे इस अज्ञान का नाश होता है।

प्राणायाम की सुगम क्रिया।

प्रातःकाल नित्य कर्म से निवृत्ति होकर साधना के लिए किसी स्वच्छ शांति दायक स्थान में आसन बिछा कर बैठिए दोनों हाथ दोनों घुटनों पर रखिए। मेरुदन्ड सीधा रहे। नेत्र बन्द कर लीजिए।

फेफड़ों में भरी हुई सारी हवा बाहर निकाल दीजिए। अब धीरे धीरे नासिका द्वारा सांस लेना आरम्भ कीजिए जितनी अधिक मात्रा में भर सकें फेफड़ों में भर लीजिए। अब कुछ देर उसे भीतर ही रोके रहिए। इसके पश्चात् सांस को धीरे धीरे नासिका द्वार से बाहर निकालना आरम्भ कीजिए। हवा को जितना अधिक खाली कर सकें कीजिए। अब कुछ देर सांस को बाहर ही रोक दीजिए, अर्थात् बिना सांसके रहिए, इसके बाद पूर्ववत वायु खींचना आरम्भ कर दीजिए। यह एक प्राणायाम हुआ। सांस निकालने में रेचक, खीचने को पूरक और रोके रहने को कुँभक कहते हैं; कुँभक के दो भेद हैं। सांस को भीतर भर कर रोके रहना 'अन्तर कुँभक' और खाली करके बिना सांस रहना 'वाह्य कुँभक' कहलाता है। रेचक और परकमें समय बराबर लगाना चाहिए पर कुँभक में उसका आधा समय ही पर्याप्त है।

पूरक करते समय भावना करनी चाहिए कि मैं जन शून्य लोक में अकेला बैठा हूँ मेरे चारों ओर चैतन्य विद्युत प्रवाह जैसी जीवनी शक्ति का समुद्र लहरें ले रहा है। सांस द्वारा वायु के साथ साथ उस प्राण शक्ति को मैं अपने अन्दर खींच रहा हूँ।

अन्तर कुँभक करते समय भावना करनी चाहिए कि उस चैतन्य प्राण शक्ति को मैं अपने भीतर भरे हूँ। समस्त नस नाडियों में अंग प्रत्यङ्गों में वह शक्ति जज्ब हो रही है। उसे सोख कर देह का रोम-रोम चैतन्य,प्रफुल्ल,सतेज एवं परिपुष्टहोरहा है।

रेचक करते समय भावना करनी चाहिए कि शरीर में संचित मल, रक्त में मिले हुए विष, मन में धँसे हुए विकार, सांस छोडने पर वायु के साथ साथ बाहर निकले जारहे हैं।

वाह्य कुँभक करते समय भावना करनी चाहिए कि अन्दर के दोष सांस द्वारा बाहर निकाल कर भीतर का दरवाजा बन्द कर दिया गया है ताकि वे विकार वापिस लौटने न पावें।

इन भावनाओं के साथ प्राणाकर्षण प्राणायाम करने चाहिए। आरम्भ में पांच प्राणायाम करें फिर क्रमशः सुविधानुसार बढ़ाते जावें।

———

क्रिया योग।

—:※×※:—

सम्पत्तिवान बनने के लिए यह आवश्यक है कि अधिक कमाया जाय और उस कमाई को सुरक्षित रखा जाय। आत्मिक दृष्टि से सम्पन्न बनने के लिए भी हमें यही करना पड़ता है। आत्मिक गुणों को, अध्यात्मिक तत्वों को अपने अन्दर बढ़ाना और उन तत्वों को क्रियात्मक रूप में चरितार्थ करना यही कमाना और जमा करना है। इसी रीति से साधक आत्म सम्पत्ति शाली बनता है।

आहार विहारकी सुव्यवस्था से शारीरिक स्वास्थ्य को बढ़ाना,विद्या विवेक, ज्ञान, विज्ञान, कला चातुर्य सेमानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाना धन,प्रतिष्ठा,मित्रता लोक सेवा एवं सत्कार्यों द्वारा सामाजिक स्वस्थता बढ़ाना, हर साधक के लिए आवश्यक हैं। जो इनसे जितना संपन्न होगा उसकी आन्तरिक स्थिति उतनी ही मजबूत होगी, मजबत भूमि पर ही दया,उदारता परोपकार, पवित्रता, संयम, ईश्वर परायणता के पौदे उगते हैं। जैसे ऊसर भूमि में उत्तम बीज या तो जमते ही नहीं या जमते हैं तो अल्प काल में ही सूख जाते हैं उसी प्रकार जिनका शारीरिक, मानसिक,सामाजिक स्वास्थ्य ठीक नहीं वे आत्म बल की सम्पन्नता प्राप्त नहीं कर सकते। बीमार आदमी कुछ कमाता नहीं वरन् जो मौजूद है उसे भी गँवाता रहता है इसी प्रकार शरीर मन और समाज क्षेत्रों में जो व्यक्ति अस्वस्थ है उसके लिए पुण्य कमाना कठिन है। निर्बलता एक पाप है—पाप से पाप की उत्पन्न होता है। अनुचित स्थिति में पड़े हुए व्यक्ति के लिए उचित विचार और कार्य कर सकना असंभव नहीं तो अत्यन्त कष्ट साध्य अवश्य हैं।

आत्म सम्पदाओं से सुसज्जित बनने की आकांक्षा रखने वालों को चतुर्मुखी उन्नति करने की आवश्यकता है। धर्म अर्थ, काम, मोक्ष चारों एक ही पलङ्ग के चार पाये हैं। शरीर मन, समाज और अन्तःकरण चारों की स्वस्थता मिल कर एक पूर्ण स्वस्थता कहलाती हैं। इसलिए आत्मोन्नति के के इच्छुकों को अपनीचतुर्विधि उन्नति के लिए सतत प्रयत्न शील रहना चाहिए। ताकि आत्मोन्नति से सुरम्य पौदे उगने लायक अन्तःभूमि तैयार हो जावे।

इसके साथ साथ यह भी आवश्यक है कि इन उपार्जित सम्पदाओं को स्थायी बनाया जाय, और सुरक्षित किया जाय। इसका वैज्ञानिक तरीका 'दान' है। सत्पात्रों को देना - ऐसे निमित्त के लिए देना—जिससे सात्विकता की वृद्धि हो, लोक कल्याण हो, दान कहलाता है। केवल धन का ही दान नहीं होता शरीर, मन, वाणी, प्रभाव, प्रयत्न तथा धनसे अपने निज के स्वार्थ के लिए कम से कम उपयोग करना चाहिए और उनका अधिकांश भाग दान कर देना चाहिए। सम्पत्ति को सुरक्षित रखने का यही सबसे अच्छा तरीका है। जो कमाता तो खूब है पर दान नही करता वह भूसी को कूटने के समान पानी को बिलोने के समान निरर्थक प्रयत्न में अपनी शक्ति बराबर करता है। सोने का पहाड़ जमा कर लेना गधे के बोझ की बराबर पुस्तकें रट लेना, भैंसे की बराबर बलवान् हो जाना, हौवा की तरह प्रसिद्ध हो जाना निरर्थक है, यदि [illegible] शक्तियों से आत्मोन्नति के मार्ग में उपयोग न हो। दान करने से ही यह शक्तियां आत्मा के बैङ्क में जमा होती हैं। दान करते ही—तुरन्त, उसी क्षण, एक आन्तरिक सन्तोष प्राप्त होता है, यह उस बैंक की रसीद है। इस रसीद को देख कर यह अनुभव किया जा सकता है कि कमाई हुई पूंजी सम्राटों के सम्राट परमात्मा के रिजर्व बैंक में जमा हो गई। यह कमाना और जमा करना क्रिया योग कहलाता है।

× × × × ×

प्रलोभन और विपत्ति, यही दो मनुष्य के परीक्षा अवसर हैं। जो प्रलोभन पर फिसलता नहीं और विपत्ति में विचलित नहीं होता वही वीर पुरुष है।

——

मौन व्रत।

किनने ही व्यक्तियों को ऐसी आदत होती है कि उनसे चुप नहीं रहा जाता। हर वक्त कतरनी की तरह उनकी जीभ चलती रहती है। कोई कहने योग्य आवश्यक बात हो या न हो, उन्हें कुछ न कुछ कहे बिना चैन नहीं पडता। व्यर्थ की, अनर्गल, झूंठी, मनगढ़ंत, निष्प्रयोजन, गप शप करते हुए उन्हें बडा मजा आता है। वास्तव में यह एक बडा दुर्गुण है। वाणी हमारी पवित्र आध्यात्मिक एवं महत्व पूर्ण शक्ति है। इसके एक एक अणु का सदुपयोग होना चाहिए।

लोग नहीं समझते कि शब्द के साथ हमारी कितनी विद्युत शक्ति, जीवनी शक्ति एवं प्राण शक्ति मिली रहती है। वाणी के साथ साथ हमारी सचित शक्तियों का क्षरण होता है। देखा जाता है कि वाणी के द्वारा शत्रुओं को मित्र और मित्रों को शत्रु बनाया जा सकता है। किसी के शब्दों में रस बरसता है और अमृत झरता है किन्तु किसी की जीभ जब चलती है तो दुर्गन्ध, द्वेष, घृणा और विग्रह ही उत्पन्न करती है। इससे प्रकट है कि हमारे भीतरी तत्व वाणी के साथ समिश्रित होते हैं। वाणी जब निकलती है तो अपने साथ हमारे शक्ति कोष को लपेट लाती है। इस कोष को यदि अकारण, अनुपयुक्त दिशा में खर्च किया जाय तो न केवल हमारी प्राणशक्ति नष्ट होगी वरन् बकवास की एक दूषित आदत भी हमारे पीछे पड़ जायगी।

महात्मा गांधी अपना अधिक समय मौन में बिताते हैं। सप्ताह में एक दिन तो मौन उनका रहता ही है। इसके अतिरिक्त वे काम करते समय चुप रहते हैं महत्व पूर्ण राजनैतिक वार्ताओं में भी वे उतना ही बोलते हैं जितना बोले बिना काम नहीं चलता उनका कथन है कि--"मौन एक ईश्वरीय अनुकम्पा है, मौन के समय मुझे आन्तरिक आनन्द मिलता है।"

होना पडता है। कोलाहल में हम पास के शब्द भी नहीं सुनपाते किन्तु निस्तब्ध वातावरण मेंदूर दूरकी शब्द ध्वनियां भी आसानी से सुनी जा सकती हैं। दिव्य लोकों से हमारे लिए जो दिव्य आध्यात्मिक सन्देश आते हैं उन्हें सुनने के लिए मौन होने की आवश्यकता पड़ती है। आत्मा के प्रति परमात्मा की जो सन्देश ध्वनियां आती हैं उन्हें मन और वाणी से मौन होकर ही सुना जा सकता है। यह एक दैवी रेडियो है। चुप रह कर अन्तर्मुखी होकर ही साधक परमात्मा के प्रकाश को ग्रहण कर सकता है। जो लप लप हर घडी जीभ चलाता रहता है दुनियां भर की अगड़म बगड़म बकता रहता है उसके लिऐ अन्तर्मुखी होना और मौन के दैवी लाभ को प्राप्त करना कठिन है।

एक बार ऋषि भाष्कलि ने अपने आचार्य से प्रश्न किया कि--"भगवन्, ब्रह्म को कैसे प्राप्त किया जा सकता है?" आचार्य ने कोई उत्तर न दिया। भाष्कलि ने सात बार यह प्रश्न पूछा पर आचार्य सातों बार चुप रहे। अन्त में उनने कहा—भद्र! मैं बार बार उत्तर दे रहा हूँ, पर तू समझता ही नहीं। उस ब्रह्म को वाणी से कहा सुना नहीं जा सकता उसे तो मौन होकर ही समझा और प्राप्त किया जा सकता है।

ब्रह्मचर्य केवल वीर्य संचय को ही कहते हों सो बात नहीं, शक्तियों के क्षरण को रोकना ब्रह्मचर्य है। वाणी का संयम 'वाक् ब्रह्मचर्य' कहलाता है। जिस प्रकार वीर्य के अपव्यय से रोग, जरा और अकाल मृत्यु की गोद में जाना पडता है वैसे ही वाणी का दुरुपयोग, अपव्यय करने पर मानसिक शक्तियों की न्यूनता होती जाती है। कहते हैं कि--"जो गरजते हैं सो बरसते नहीं।" कारण स्पष्ट है. बकवास में जिनकी शक्तियां अधिक खर्च हो जाती हैं। कार्य करते समय उसे उन शक्तियों की कमी पड जाती है। संसार के जितने भी रचनात्मक कार्य करने वाले, महापुरुष, वैज्ञानिक ग्रन्थकार, सेनापति, एवं महात्मा हुए हैं वे सभी

रहना चाहिए। मितभाषण को शास्त्रीकारों ने मौन कहा है। जो भाषण किसी के लाभ हित या कल्याण के उद्देश्य से किया जाता है वह मौन है। उतना ही बोलना चाहिए जितना बोलना आवश्यक है। शेष समय में चुप रहना चाहिए।

योग शास्त्रों में चार वाणी बताई हैं। (१) परा वाणी (२) पश्यान्ति वाणी (३) मध्यमा वाणी (४) वैखरी वाणी। इनमें से परा और पश्यन्ति सूक्ष्म तथा मध्यमा और वैखरी स्थूल हैं। मन में जो संकल्प उठते हैं, जो सोच विचार, ऊहापोह, तर्क वितर्क, आयोजन वियोजन, होते हैं उनमें सूक्ष्म वाणी का प्रयोग होता है। मध्यमा वाणी कन्ठ में और वैखरी जिव्हा में रहती है। घुस पुस, अस्पष्ट, वाणी कन्ठ से और स्पष्ट ध्वनि वाली वाणी जिव्हा से उत्पन्न होती है। इन चारों ही वाणियों का हमें संयम एवं सदुपयोग करना चाहिए।

जिव्हा खोलने से पहले शब्दोच्चार करने से पहले यह विचार करना चाहिए कि जो बात कहने जा रहे हैं वह किसी के लाभ के लिए कही जा रही है या नहीं? जितने विस्तार से कहनी चाहिए इन दोनों प्रश्नों को सामने रख कर भाषण करना इस प्रकार ध्यान रख कर जो वार्तालाप, किया जाता है वह मौन है। लोक हित की, परमार्थ की दृष्टि से जो कुछ कहा जाता है वह मौन ही है। निष्प्रयोजन फिजूल बातों से बचना मौन का प्रधान उद्देश्य है।

मन में उठने वाले विचारों में विविधि कल्पनाऐं होती हैं, उनमें दृश्य और वाणी दो अंग होते हैं। इसमें भी संयम बरता जाना चाहिए। लोक हितकारी, परमार्थिक, सात्विक, वास्तविक, उचित कल्पनाओं को ही मस्तिष्क में स्थान मिलना चाहिए व्यर्थ की चिन्ताऐं, कल्पनाऐं, तृष्णाऐं, इनमें भरे रहने से परा एवं पश्यान्ति वाणियों का क्षरण होता है। आत्मिक शक्तियों का अपव्यय होता है।

मन और शरीर दोनों का मिलाकर ही एक पूर्ण मौन बनता है। जो एकांगी ही वह अधूरा है। जवान से चुप रहना और मन में तूफान चलाते रहना, यह तो अधूरी चीज हुई। मौनी का ही दूसरा नाम मुनि है मुनि से जीवन शक्ति दूर नहीं होती।

मौन की साधना।

मौन की अंतिम सफलता प्राप्त करने के लिए उसकी विधित साधना करनी चाहिए। सप्ताह में एक दिन या पखवाड़े में एक दिन मौन व्रत होना चाहिए। यह कम से कम ४ घन्टे लगातार का होना चाहिए। यदि प्रति २ घन्टे की साधना हो सके तो और भी अच्छा। सुविधानुसार यदि समय और भी अधिक बढाया जा सके तो और भी अच्छा है। मौन के समय अन्य शारीरिक कार्य न करने चाहिए। पूर्ण विश्राम लेते हुए एकान्त स्थान में रहना चाहिए। मौन काल में पुस्तकें नहीं पढनी चाहिए और नविविधि विषयों पर मन डुलाना चाहिये इस समय चित्त को सब ओर से हटा कर इष्ट देव का या प्रकाश ज्योति का ध्यान करना चाहिए। मौन काल में भोजन नहीं करना चाहिए।

इस छोटी सी साधना को करते रहने से मौन में सफलता मिलती है। साधक मुनि बनता है। मौनी की वाणी बडी प्रभावशाली होती है। उसका शाप बरदान सफल होता है। चित्त में शान्ति रहती है और आत्म बल बढता है।

❋ सात्विक सहायताऐं ❋

२१) श्री बाबूभाईजी अहमदाबाद
२०) ठा० शमशेरसिंहजी, खपरिया
१५) राजकुमारी 'ललन' मैनपुरी स्टेट,
१०) श्रीमती सावित्रीदेवी जी, उलाव
१०) श्री जे० एच० हैगिस्टे, भादरा, अहमदाबाद
४) श्री फूलचन्द अवस्थी जवलपुर
३) श्री केशवनाथसिंह कानूनगो, बस्ती
२।।) श्री बृजविहारीलाल श्रीवास्तव, जवलपुर
२।।) श्री बद्रीप्रसाद भगवानदास भरथना
२।।) श्री भूपतिराम साकरिया, जोधपुर
२) श्री वी० आर० पटेल, बम्बई
२) श्री शान्तिस्वरूप गर्ग, गोरखपुर
१) श्री मुरारीलालजी जवलपुर।

अपने भगवान् से--

(श्री ठा० महिपालसिंहजी निमदीपुर)

करुणा निधान, भगवान्. दीन के दुःखों का अनुमान करो।
तुम अपने तुल्य आप ही हो, संतप्त हृदय का ताप हरो॥
दिन रात घात कल पाती है, उत्पात मचाने वालों की।
क्यों बात रोकली जाती है, इन दुःख उठाने वालों की॥

जो ध्यान आपका धरते हैं, डरते हैं अत्याचारों से।
हां! उन्हें निपटना पडता है अत्याचारी हत्यारों से॥
यदि कहने का विश्वास न हो तो दशा देखलो आकर के।
तुम भी कुचक्र से डरते हो, हां! चक्रपाणि कहला कर के॥

सुन कर पुकार तुम भक्तों की, रुकने वाले भगवान् न थे।
निष्पक्ष न्याय के साथी थे, झुकने वाले भगवान् न थे॥
देखो पुकार है मची हुई दुनियां के कोने-कोने में।
क्या अब भी देर समझते हो, मायाधिप दुर्गति होने में॥

जब जब दुष्टों का जोर हुआ तब तब रक्षा तुमने की है।
विश्वास आप पर था जिनका उन भक्तों की सुधि भी ली है॥
दिन रात हाथ धोकर पीछे ये उत्पाती हैं पड़े हुए।
इस ओर आपके विश्वासी, छाती खोले हैं अड़े हुए॥

प्रतिवन्ध नहीं क्या हो सकता? षड़ यन्त्र रचाने वालों का।
अथवा हो सकता न्याय नहीं? अन्याय मचाने वालों का॥
दुख से क्यों द्रवित न होते हो? क्यों दया दिखाना भूल गये।
रावण का—खरदूषण का—दल, उत्पात मचाता नये नये॥

तुमसे तो सही न जाती थी, गति विधि भी अत्याचारी की।
मानव समाज में मनोतीत पदवी थी गौ प्रहारी की॥
क्या यह संकट का समय नही? या करुणा क्रन्दन थोड़ा है।
अथवा मारग ही भूल गये या जान बूझ मुख मोड़ा है॥

ऐसा तो लाखों वार हुआ है टेर लगाते देर हुई।
पर दीनों के हित दीन बन्धु को कभी न आते देर हुई॥
यह उदासीनता दीनों से अनुचित है दीनानाथ तुम्हें।
इस धर्म क्षेत्र में अर्जुन का देना है भगवन् साथ तुम्हें॥

—:※×※:—

प्रकाशक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, अखण्ड ज्योति कार्यालय, मथुरा।
मुद्रक—[illegible]